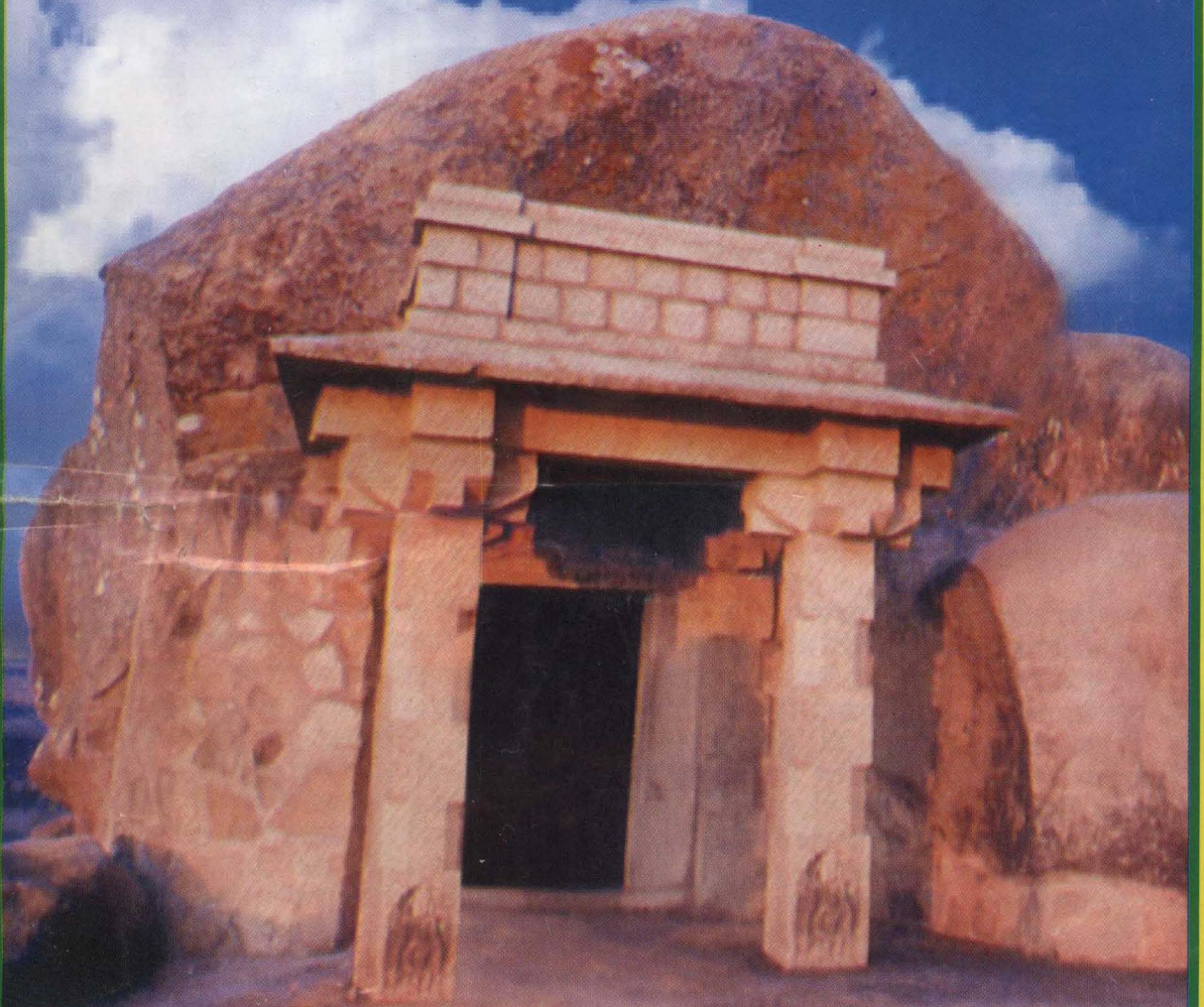


जिनभाषित

वीर निर्वाण सं. 2530



भद्रबाहु गुफा
श्रावणबेलगोला

श्रावण, वि.सं. 2061

जुलाई 2004

पूजनीया आर्यिका श्री मृदुमति जी का संसंघ वर्षायोग कलशस्थापन



आर्यिका श्री निर्णयमति जी

आर्यिका श्री मृदुमति जी

आर्यिका श्री प्रसन्नमति जी

परमपूज्य आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज की सुरोग्य शिष्या पूजनीया आर्यिका श्री 105 मृदुमति माता जी, पूजनीया आर्यिका श्री 105 निर्णयमति माताजी एवं पूजनीया आर्यिका श्री 105 प्रसन्नमति माताजी, संघस्थ ब. पुष्पा दीदी एवं ब. सुनीता दीदी के चातुर्मास मंगल कलश की स्थापना मध्यप्रदेश की राजधानी इंदौर की नगरी भोपाल के दिगम्बर जैन मंदिर चौक में 4 जुलाई 2004 को विशाल जनसमूह के बीच विधिविधान पूर्वक की गई। पूज्य माता जी ने इस मंगल अवसर पर अपने उद्बोधन में कहा-मुनिआर्यिकाओं को दो बातों पर ध्यान देना होता है, पहली भैक्ष्यशुद्धि और दूसरी प्रतिष्ठापनासमिति। उन्होंने मूलाचार के आधार पर बतलाया कि आहारचर्या के निर्दोष होने पर ही व्रत, शील और गुण रहते हैं, इसलिए मुनि सदैव आहारचर्या को शुद्ध करके विचरण करते हैं अर्थात् आहार की शुद्धि ही प्रधान है, वही चारित्र्य है और सभी में सारभूत है। यही बात आर्यिकाओं पर लागू होती है। मुनि और आर्यिकाओं को 46दोषों से रहित आहारग्रहण करना चाहिए। अतः श्रावकों को भी यह ज्ञान होना चाहिए कि वे 46दोष कौन से हैं। श्रावकों को यह ज्ञान होने पर ही वे मुनि और आर्यिकाओं को भैक्ष्यशुद्धि का ध्यान रखते हुए आहार दे सकते हैं।

विशुद्ध भावों से कर्मों का क्षय होता है। इसलिए जो निर्दोष आहार या हिंसादि पापरहित निर्दोष उपकरण या दोनों को

विशुद्ध परिणामों से मुनि को देता है और जो मुनि ऐसे निर्दोष आहार उपकरण आदि ग्रहण करते हैं उन दोनों को महान फल मिलता है। जो आहारादि प्रशस्त और निर्दोष हैं, वात, पित्त, कफ आदि दोषों को शांत करने वाले हैं, सर्व रसों से युक्त हैं, ऐसे आहारादि गुरुओं को पड़गाहन आदि करके नवधा भक्ति पूर्वक श्रद्धा आदि सात गुणों से युक्त होकर मेरे द्वारा दिए जाने चाहिए, यह दाता की शुद्धि है। तथा सभी आहारादिविधि त्याज्य ही है, मुझे इस शोभन आहार के ग्रहण करने से क्या प्रयोजन है? यत् किंचित् मात्र भी प्रासुक आहार ग्रहण करके उदर भरना चाहिए, ऐसा परिणाम होना पात्र की आत्मशुद्धि है।

सम्पूर्ण मूल गुणों और उत्तर गुणों में मूल योग प्रधानवत् भिक्षाशुद्धि है, जिसका वर्णन कृत कारित अनुमोदना-रहित प्रासुक भोजन की समय पर उपलब्धि के रूप में जिन प्रवचन में किया गया है अतः भिक्षाशुद्धि को छोड़कर उपवास, त्रिकाल योग, अनुष्ठान आदि अन्य योगों को वे ही करते हैं, जो विज्ञान अर्थात् चारित्र्य से रहित हैं और परमार्थ को नहीं जानते हैं। तात्पर्य यही है कि आहार की शुद्धिपूर्वक जो थोड़ा भी तप किया जाता है वह शोभन है।

परिमित और प्रशस्त आहार प्रतिदिन भी लेना श्रेष्ठ है किन्तु चर्याशुद्धिरहित अनेक उपवास करके अनेक प्रकार की पारणाएँ श्रेष्ठ नहीं हैं।

जुलाई 2004

मासिक

वर्ष 3, अङ्क 6

जिनभाषित

सम्पादक

प्रो. रतनचन्द्र जैन

कार्यालय

ए/2, मानसरोवर, शाहपुरा
भोपाल 462039 (म.प्र.)
फोन नं. 0755-2424666

सहयोगी सम्पादक

पं. मूलचन्द्र लुहाड़िया,
(मदनगंज किशनगढ़)
पं. रतनलाल बैनाड़ा, आगरा
डॉ. शीतलचन्द्र जैन, जयपुर
डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौत
प्रो. वृषभ प्रसाद जैन, लखनऊ
डॉ. सुरेन्द्र जैन, 'भारती', बुरहानपुर

शिरोमणि संरक्षक

श्री रतनलाल कैवरीलाल पाटनी
(मे.आर.के. मार्बल्स लि.)
किशनगढ़ (राज.)
श्री गणेश कुमार राणा, जयपुर

प्रकाशक

सर्वोदय जैन विद्यापीठ
1/205, प्रोफेसर्स कालोनी,
आगरा-282002 (उ.प्र.)
फोन: 0562-2151428,
2152278

सदस्यता शुल्क

शिरोमणि संरक्षक 5,00,000 रु.
परम संरक्षक 51,000 रु.
संरक्षक 5,000 रु.
आजीवन 500 रु.
वार्षिक 100 रु.
एक प्रति 10 रु.
सदस्यता शुल्क प्रकाशक को भेजें।

अन्तस्तत्त्व

पृष्ठ

❖ सम्पादकीय	: बहिष्कार समाधान का मार्ग नहीं है	3
❖ प्रवचन		
◆ होता वही है जो सामने आ जाता है	: आचार्य श्री विद्यासागर जी	2
◆ नारियल में मोक्ष मार्ग	: मुनि श्री आर्जव सागर जी	4
◆ प्रवचन	: आर्यिका श्री मृदुमति जी	आ.पृ. 3
❖ लेख		
◆ असंख्यात गुणी निर्जरा शुभोपयोग में भी	: मुनि श्री निर्णय सागर जी	6
◆ नवकोटि विशुद्धि	: स्व. पं. मिलापचन्द्र जी कटारिया	8
◆ महावीर का श्रावक वर्ग तब और अब : एक आत्मविश्लेषण	: प्रो. सागरमल जैन	9
◆ कर्मसिद्धान्त-व्यवस्था से वेदवैषम्य की सिद्धि	: प्रो. रतनचन्द्र जैन	12
◆ यह न करें चातुर्मास म	: एलक नम्रसागर जी	16
◆ गिरनार एक ज्वलन्त समस्या बहुसंख्यकों को भी अपने हृदय उदार बनाने होंगे	: कैलाश मड़बैया	17
◆ धर्म में राजनीति	: मूलचन्द्र लुहाड़िया	19
◆ आवश्यकता अन्वेषण-संस्थान की	: इंजी. धरमचन्द्र जैन बाझल्य	22
◆ किटकैट चॉकलेट में कोमल बछड़ों का मांस		24
❖ प्राकृतिक चिकित्सा		
◆ सैर/व्यायाम/टहलना	: डॉ. रेखा जैन	26
❖ जिज्ञासा-समाधान	: पं. रतनलाल बैनाड़ा	28
❖ बोध-कथाएँ		
◆ खुशामद का फल		30
◆ निर्जीव सी बातें: खम्भा और जीना		आ.पृ. 3
❖ ग्रन्थ समीक्षा		
◆ वास्तु विज्ञान	: डॉ. ज्योति जैन	23
◆ प्रतिष्ठा पराग	: डॉ. ज्योति जैन	25
❖ कविताएँ		
◆ गोमटेश अष्टक	: मुनि श्री आर्जव सागरजी	आ.पृ. 2
◆ अनासक्ति का अवदान	: योगेन्द्र दिवाकर	21
◆ सम्यक् अनुप्रेक्षा	: महेन्द्र कुमार जैन	आ.पृ. 4
◆ मुक्तक	: मनोज जैन 'मधुर'	21
❖ समाचार		31

लेखक के विचारों से सम्पादक को सहमत होना आवश्यक नहीं है।
जिनभाषित से सम्बन्धित विवादों के लिए न्यायक्षेत्र भोपाल ही मान्य होगा।

होता वही है जो सामने आ जाता है

आचार्य श्री विद्यासागर जी

श्रमण शिरोमणि आचार्य विद्यासागर जी ने मध्यप्रदेश की संस्कारधानी जबलपुर के तिलवारा घाट स्थित गोशाला में 25 मुनिवरो के साथ दिनांक 1 जुलाई 2004 को वर्षायोग-स्थापना की। भक्ति प्रारंभ करने से पूर्व उपस्थित हजारों श्रावकों को संबोधित करते हुए आचार्य श्री ने कहा कि श्रमणसंघ वर्षाकाल की प्रतीक्षा में रहता अतः आषाढ़ शुक्ल चतुर्दशी की रात्रि के प्रथम पहर में वर्षायोग की प्रतिष्ठापना और कार्तिक की अमावस्या पर निष्ठापन करता है। केवल दयोदय शब्द कहने से किसी संस्था की ओर दृष्टि जाती है, तो वह जबलपुर पर जाती है। इतना अवश्य है कि करने या कहने से काम नहीं होता, होता वही है जो सामने आ जाता है।

हम तो जीवन पर्यन्त के लिए बंधे हुए हैं। जब तक मुक्ति का सम्पादन नहीं होता, हमने अपने आपको भगवान् की शरण में बाँध लिया है। यह गुरु (आचार्य ज्ञानसागर जी) की आज्ञा है। हम तो देव-गुरु-शास्त्र से बंधे हैं। गुरु महाराज ने कहा था कि दुकान बड़ी खोलना चाहिए छोटी नहीं। दुकान चलती-फिरती होगी, तो उससे ग्राहक जुड़ जाते हैं। जो देव-गुरु-शास्त्र से जुड़ा है, उसका संकल्प दृढतर होता जाता है। मोक्षमार्ग में कदम रखने के बाद मोहमार्ग की ओर नहीं जाना चाहिए अन्यथा मोक्षमार्ग समाप्त हो जाएगा। हमें हमारे गुरु ने ऐसे सूत्र दिए जिनके माध्यम से शिष्य मोक्षमार्ग के सूत्र से बाँध जाता है, उसका बाल भी बाँका नहीं होता। गुरु महाराज ने कहा- जो

कुछ भी बाहर से करना है, हो चुका है। अब जो कुछ है, वह भीतरी है। भीतर देखना आवश्यक है। बाहर देखना गलत है। समयसार को याद रखने वाली मूर्ति सार को याद रखती है। गुरुजी की साधना अनूठी थी उनका वरदहस्त हम पर रहा। उन्होंने जीवन का मंथन करके सार तत्त्व ग्रहण कर लिया था। आप भी करने योग्य कार्य को करते चले जाइए। कार्य करने के प्रति निष्ठा रखिए। यह बात हमने गुरु महाराज से सीखी। जब तक प्राण हैं, तब तक कर्तव्य के प्रति जागरुकता रखनी चाहिए। गुरुजी ने कहा था संघ को गुरुकुल बना देना। नमक का महंगा होना और मुद्रा का तैरना राष्ट्र के लिये घातक है। तीर्थ या मंदिर पर जो धर्मध्वजा लहराती है, उसके लहराने में मन, वचन, काय और धन आपका होता है। उसमें से धन हटाने पर शेष हमारे पास है। धर्म की प्रभावना बढ़े, ऐसा उपदेश देना चाहिए। समाज का धन के प्रति मोह छूट जाये, तो साधु का उपदेश सार्थक हो जाता है। पेट तो भरा जा सकता है, पेटी नहीं भरी जा सकती। पेटी को भरने का अंत नहीं है। राग की प्रवृत्ति सीमित होने की प्रभावना हो जाये, तो उपदेश सार्थक हो जाएगा। आप अपने धन के बाँध में लीकेज आने दें। धन को करुणा, परमार्थ के कार्य में बहने दें, रोके नहीं। धनसंग्रह की सीमा रखना चाहिए।

प्रेषक-निर्मल कुमार पाटोदी, इन्दौर

धर्म/धर्मात्मा

- उज्ज्वल भावधारा का नाम ही धर्म है।
- धर्म तो अपने श्रम की निर्दोष रोटी कमाकर देने में ही है।
- 'स्व' से पलायन नहीं, 'स्व' के प्रति जागरण का नाम ही धर्म है।
- आत्मा का सम परिणाम ही स्वभाव है वही समता है वही धर्म है।
- धर्म, प्रदर्शन की बात नहीं किन्तु दर्शन, अन्तर्दर्शन की बात है।
- धर्म वृक्ष से गुजरी हुई सद्भावना की हवा सभी को स्वस्थ एवं सुन्दर बनाती है।
- धर्म का अर्थ यही है कि दीन-दुखियों को देखकर आँखों में करुणा का जल छलके, अन्यथा नारियल में भी छिद्र हुआ करता है।

साभार: सागर बूँद समाज

बहिष्कार समाधान का मार्ग नहीं है

8 जुलाई 2004 के 'जैन गजट' में माननीय पं. नरेन्द्रप्रकाश जी जैन का सम्पादकीय लेख 'समाधान की दिशा में एक अपील' पढ़ा। उन्होंने लिखा है कि जैन मित्र के 3 जून 2004 के अंक में किन्हीं आनन्दवर्धन जैन द्वारा प्रेषित एक समाचार 'अनिवार्य खुला निमन्त्रण पत्र' शीर्षक से छपा है, जिसमें (भगवान् महावीर की जन्मभूमि के विषय में भिन्न विचार रखने के कारण) पूजनीया आर्यिका ज्ञानमती जी और उनकी टीम का बहिष्कार करने का इरादा व्यक्त किया गया है। पढ़कर दुःख हुआ। निन्दा और बहिष्कार राजनीतिक हथकण्डे हैं। ये दूसरों की छवि को विकृत कर स्वयं को उज्वल, सही और श्रेष्ठ सिद्ध करते हुए अपनी कुत्सित प्रवृत्तियों को संरक्षण देने के लिए अपनाये जाते हैं। ये समाज में कटुता का जहर फैलाकर उसे विघटित करने वाले, नये पन्थों को जन्म दिलाने वाले और जैनों को अजैनों की गोद में ढकेलने वाले कुत्सित कारनामे हैं। निन्दा और बहिष्कार की भाषा अभद्रभाषा है, अप्रशस्तभाषा है, द्वेषभाषा है, जैनभाषा नहीं है। यह सत्याणुव्रत और सत्यमहाव्रत दोनों के विरुद्ध है। यह उच्चगोत्र के आस्रव की भी विरोधिनी है।

यदि कहीं आगम विरुद्ध मान्यताएँ और प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं, तो उनका भद्रतापूर्वक शालीन भाषा में विरोध किया जाना चाहिए। क्योंकि जैसे अन्याय और अत्याचार का विरोध न करने से उन्हें बढ़ावा मिलता है, वैसे ही आगमविरुद्ध मान्यताओं, प्रवृत्तियों और शिथिलाचार का विरोध न करने से उनके पल्लवित और पुष्पित होने का मार्ग प्रशस्त होता है। विरोध न करना उनकी अनुमोदना करना है। क्योंकि विरोध न करने से स्वेच्छाचारी सोचता है कि समाज को उसकी आगमविरुद्ध मान्यताओं और प्रवृत्तियों पर कोई आपत्ति नहीं है, उन्हें उसने स्वीकार कर लिया है। यह सोचकर वह लोकभय से मुक्त हो जाता है, जिसके फलस्वरूप उसके स्वेच्छाचार में वृद्धि होती जाती है और स्वेच्छाचारियों की संख्या बढ़ती है। ताजा उदाहरण के लिये 'संस्कार सागर' (जुलाई 2004) में प्रकाशित लेख 'यात्रा चाँदी से चरस तक की' पठनीय है। ज्ञानार्णव में आचार्य शुभचन्द्र ने कहा है कि जब भी धर्म का नाश होने लगे, सत्प्रवृत्तियों के ध्वस्त होने की नौबत आ जाए और सत्सिद्धान्त संकट में पड़ जायें, तब उनकी रक्षा के लिए ज्ञानियों को स्वयं ही मुँह खोलना चाहिए-

धर्मनाशे क्रियाध्वंसे सुसिद्धान्तार्थविप्लवे।

अपृष्टैरपि वक्तव्यं तत्स्वरूपप्रकाशने ॥ 9/15 ॥

इस प्रकार आगमविरुद्ध मान्यताओं और प्रवृत्तियों का विरोध आगमोक्त कर्तव्य है। परन्तु यह आगमोक्तमार्ग से ही सम्पन्न किया जाना चाहिए। आगमोक्त मार्ग एक ही है: आगमविरुद्ध मान्यताओं और प्रवृत्तियों को भद्रतापूर्वक दोषी व्यक्ति की दृष्टि में लाना और आगमप्रमाण एवं युक्तियों के द्वारा समझाकर उनके परित्याग की प्रेरणा देना। अगर दोषी व्यक्ति पर इसका असर नहीं पड़ता, तो अन्तिम उपाय है उसके साथ असहयोग करना, उससे दूरी बना लेना और दूसरों को भी इसके लिए प्रेरित करना। इससे सामाजिक अनुमोदना न मिलने पर दोषी व्यक्ति के अलग-थलग पड़ जाने से उसके मन पर असर पड़ सकता है और चिन्तन-मनन के द्वारा उसकी आगम विरुद्ध मान्यताओं और प्रवृत्तियों में परिवर्तन संभव है "असंजदं ण वन्दे वच्छविहीणो वि सो ण वंदिज्ज" यह सूक्ति आचार्य कुन्दकुन्द ने इस अन्तिम उपाय के रूप में ही कही होगी।

बस, आगमोक्त मार्ग यहीं समाप्त हो जाता है। इसके आगे का मार्ग हृदयपरिवर्तन का नहीं हृदयविदारण का है। अतः वह अनागमोक्त है। जिसे हम दोषी मान रहे हैं, उसकी सार्वजनिक रूप से निन्दा और बहिष्कार करके अपनी बात मनवाना अलोकतांत्रिक और आतंकवादी तरीका है। यह उसे और कट्टर बना देता है। अतः यह फूट का मार्ग है। इससे जैन समाज जैनेतरों में बदनाम भी होता है। इससे परहेज किया जाना चाहिए। महावीर जन्मभूमि पर मतभेद निश्चयाभास या शिथिलाचार जैसा गम्भीर मसला नहीं है। अतः इस विषय में बहिष्कार जैसा कृत्य तो सर्वथा अवांछनीय है।

जैनगजट के मान्य सम्पादक ने विनम्र अनुरोध किया है कि "कुण्डलपुर या वैशाली को लेकर कोई पक्ष अपने परिणामों को कलुषित न होने दे। दोनों ही स्थानों का अपना महत्त्व है, एक का पारम्परिक तो दूसरे का ऐतिहासिक। यदि दोनों क्षेत्रों का विकास होता है, तो इससे धर्म की कोई हानि होनेवाली नहीं है। जिसका मन जहाँ भी रम सकेगा और जहाँ भी उसे निराकुलता का अनुभव हो सकेगा, उसी स्थान से उसके कल्याण का मार्ग प्रशस्त होगा। आत्मकल्याण में स्थान बाधक नहीं, कषाय बाधक है।" विद्वद् नरेन्द्र प्रकाश जी का यह अनुरोध गंभीरता से विचारणीय है।

रतनचन्द्र जैन

नारियल में मोक्ष मार्ग

मुनि श्री आर्जव सागर जी

प्रातः स्मरणीय आचार्य गुरुवर श्री 108 विद्यासागर जी महाराज के सुशिष्य मुनि श्री 108 आर्जव सागर जी महाराज, क्षुल्लक श्री अर्पण सागर जी एवं संघस्थ ब्र.शान्ति कुमार जी के पावन वर्षायोग का सौभाग्य भोपाल नगर के टीन शेड, टी.टी.नगर जैन समाज को प्राप्त हुआ। वर्षायोग कलश स्थापना के मंगल अवसर 1जुलाई 2004 को मुनिश्री ने अपने मार्मिक उद्बोधन में कहा - जल की वर्षा के साथ धर्म की वर्षा का योग अब आया है। आज वर्षायोग की स्थापना का शुभ अवसर है। वर्षायोग साधुओं की आत्मसाधना का एक मंगल अवसर होता है। वर्षाकाल में जब धरती जीवराशि से आकुलित हो जाती है, तब साधु लोग अहिंसा, तप आदि की साधना के निमित्त वर्षायोग धारण करते हैं, जिसमें मौन, ध्यान आदि की विशेष साधना के साथ अनेक शास्त्रों का अध्ययन-अध्यापन का कार्य करते हैं और भव्य लोग उसका अच्छा लाभ उठाते हैं। अपनी चर्या के प्रति सतर्क रहना, ये भगवान् ने बतलाया है। एक बार गणधर परमेशी ने भगवान् से प्रश्न किया -

कथं चरे कथं चिट्टे कथमासे कथं सये।

कथं भुंजेज्ज भासेज्ज कथं पावं ण बज्झदि ॥

हे भगवन् ! कैसे आचरण करें, कैसे ठहरें, कैसे बैठें, कैसे सोवें, कैसे भोजन करें एवं किस प्रकार बोलें कि जिससे पाप से नहीं बंधे। तब इसके उत्तर में भगवान् ने कहा-

जदं चरे जदं चिट्टे जदमासे जदं सये।

जदं भुंजेज्ज भासेज्ज एवं पावं ण बज्झदि ॥

यत्पूर्वक गमन करें, यत्पूर्वक खड़े हों, यत्पूर्वक बैठें, यत्पूर्वक सोवें, यत्पूर्वक आहार करें और यत्पूर्वक बोलें, इस तरह करने से पाप का बन्ध नहीं होगा।

ऐसा भगवान् ने उपदेश दिया, जिसका अपने जीवन में अमल करते हुए साधु लोग समितियों के माध्यम से अपनी चर्या को निर्मल रखते हुए योग्य स्थानों में वर्षायोग की स्थापना करते हैं। मुनियों का जीवन मोक्षमार्ग से जुड़ा हुआ होता है और भी कोई भव्य अगर मोक्षमार्ग पर चलने को उत्सुक हो, तो उसे भी राह दिखाते हैं। इसी अवसर पर मुझे एक उदाहरण याद आया जिसके द्वारा आप लोग संक्षेप में सम्पूर्ण मोक्षमार्ग को समझ सकते हैं। कोई एक व्यक्ति भूमि को साफ-सुथरा करके पानी का सिंचन करके एक बीज बोता है, खाद-पानी और बाढ़ लगाकर उसको सुरक्षित रखता है, एक दिन वह पौधे से पेड़

बनकर फलित होता है। जब उसे तोड़ते हैं तो वह भी मीठा-मीठा पानी देता है, जो ग्लुकोज का काम करता है, शक्तिवर्द्धक होता है। कभी कुछ खाने को भी मिलता है। उस वृक्ष से बड़े परोपकार का उपदेश हमें प्राप्त होता है। "परस्पोपग्रहो जीवानाम्" इस सूत्र को चरितार्थ करता है। किसी ने पानी दिया था, उसने भी उसे पानी दिया और जिन्दगी भर देता रहता है, कोई पत्थर भी मारे तो फल ही देता है। कहा भी गया है -

परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः परोपकाराय वहन्ति नद्यः।

परोपकाराय दुहन्ति गावः परोपकाराय सुतप्रसूतिः ॥

जिस प्रकार परोपकार के लिये वृक्ष फल देते हैं, परोपकार के लिये नदियाँ बहती हैं परोपकार के लिये गाय दूध देती हैं, इसी तरह परोपकार के लिये माँ बेटे को जन्म देती है। इस प्रकार परोपकार करना प्रत्येक मानव का धर्म है। यह हमें उपदेश उस नारियल के वृक्ष से मिला। यह तो हुई नारियल के अपने वृक्ष रूपी परिवार की बात। अब कहता हूँ कि जब वह नारियल सूख करके स्वतः ही वृक्ष को छोड़कर नीचे आता है, उससे यह उपदेश मिलता है कि जो भव्य अपने परिवार से मोह, लगाव का सम्बन्ध तोड़ देता है वह सद्गुरु के चरणों में आ जाता है। इसके बाद जब उस फल को उपयोग में लाना हो, तो उसके ऊपर का सूखा पीला कवच (छिलका) निकाला जाता है, जिससे समझें कि मोक्षमार्ग में गुरु के समीप आकर भव्य दीक्षा धारण करने हेतु पहले वस्त्रों का मोचन करता है। इसके बाद जैसे नारियल के जटा उखाड़े जाते हैं, वैसे ही भव्य केशलोच करता है। जटा-जूट निकल जाने के बाद जिस प्रकार उस फल में तीन चिह्नों का दर्शन होता है, उसी तरह पूर्ण परिग्रहरहित और केशलोच के बाद साधु में रत्नत्रय के दर्शन होते हैं। उन तीन चिह्नों को सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र का प्रतीक मानना चाहिये। ये तीन दिखते हैं तो क्या हैं? आँखें हैं? आँखें नहीं बोलना चाहिए। किसी ने कहा था जो अजैन लोग किसी रागी देवी-देवताओं के सामने पशुओं की बलि देते थे और जब उन्हें किसी समय पशु नहीं मिलते थे, तब वे नारियल के जटा उखाड़कर उसमें दिखने वाले तीन चिह्नों में से दो को दो आँखें एवं एक कुम्भ बनाकर एक पशु की बलि रूप में उसे उन देवी-देवताओं के सामने शस्त्र से काट देते थे और आधा नारियल वहाँ चढ़ाकर आधा घर ले जाते थे। इस प्रकार उस परम्परा को रूढिरूप से दक्षिण के लोग अपनाते रहे, लेकिन इसका रहस्य समझने वाले

लोग बलि के पाप से बचने हेतु कभी भी नारियल को देवता के सामने नहीं काटते और न ही समर्पित करते, परन्तु वापस घर ले जाते थे।

‘मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामिति’ बोलकर श्रीफल पूरा-पूरा ही चढ़ाया जाता है, जिससे कि पूरा-पूरा ही मोक्ष मिल सके। अगर कोई नारियल को फोड़कर आधा चढ़ाये तो आधा ही मोक्ष मिलेगा, कहीं बीच में ही लटक जाएगा। इतना ही नहीं नारियल फोड़कर चढ़ाने से बलिप्रथा का भी समर्थन होता है। तथा आधा घर ले जाने से निर्माल्य खाने का भी दोष लगता है। इसके बाद सूखा हुआ वह फल बजाने से खट-खट बजता है। मानो यह उपदेश देता है कि निर्ग्रन्थ अवस्था प्राप्त होने पर साधु को भेद-विज्ञान की प्राप्ति होती है, शरीर और आत्मा भिन्न-भिन्न अनुभव में आती है। इसलिये तो उन्हें सभी परीषह और उपसर्ग को सहज रूप से समतापूर्वक सहन करने में आ जाते हैं। इसके बाद वह फल ऊपर से इतना कठोर और देखने में मटमैला होता है कि लोगों को अच्छा नहीं लगता। लेकिन अंदर स्वच्छ सफेद और मुलायम होता है। वह कहता है कि मुझे जो तुम ऊपर से देख रहे हो, वही मात्र मेरा वास्तविक स्वरूप नहीं है। वास्तविक स्वरूप तो अंदर देखने पर ही मालूम पड़ता है, इसलिये तो हमारा बाहरी नाम नारियल अर्थात् बाहर से मैं नारियल हूँ अन्दर में ओरिजनल हूँ, इसलिये मेरा नारियल नाम भी सार्थक है। इसी तरह साधु लोग ऊपर से किसी पाप, पाखण्ड, मिथ्यात्व, रुढ़िवाद आदि का खण्डन करते हुए कठोर से प्रतीत होते हैं। अस्नान व्रत होने से कभी उनका रंग अच्छा सा प्रतीत न हो, मैला-कुचैला सा लगे, तो अंतर में वे भावों से बहुत नरम सब के हितकर्ता और स्वभाव से बहुत कोमल होते हैं। इसके बाद जब उस नारियल की खोपड़ी को तोड़ा जाता है, तब अन्दर गोल भेला के दर्शन होते हैं। उसी तरह जब साधु अपने शुक्ल ध्यान से मोहनीय कर्म का नाश करते हैं, तब परम वीतरागी कहलाते हैं। नारियल की खोपड़ी की ऋतोरता बतलाती है कि मोहनीय कर्म बड़ा कठोर होता है और जिसके जाने पर अन्य कर्मों का जाना बहुत सहज हो जाता है। इसके बाद जैसे भेले के ऊपर का छिलका धीरे-धीरे निकाला जाता है, तब धवल भेला निकलता है। वैसे ही साधु लोग क्रमशः ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्म का क्षय करते हैं, तब कैवल्य की प्राप्ति करके अर्हन्त पद पाते हैं। वह अर्हन्त अवस्था एक धवल भेले के समान समझना चाहिए। अभी नारियल पूर्ण शुद्ध अवस्था को प्राप्त नहीं हुआ है, अभी उसमें और कुछ अशुद्धता बाकी है, लेकिन जब उस भेले से तेल निकाला जाता है तब वह पूर्ण शुद्ध अवस्था को प्राप्त करता है। इसी तरह केवलज्ञानी की अर्हन्त

अवस्था पूर्ण शुद्ध नहीं मानी जाती, क्योंकि अभी अघातिया कर्म उनकी आत्मा में बैठे रहते हैं। जब श्रेष्ठ शुक्लध्यान द्वारा अघातिया कर्मों का भी नाश कर दिया जाता है, तभी तेल के समान पूर्ण शुद्ध अवस्था को प्राप्त होते हैं। अब देखो वह तेल अगर एक बर्तन में डाला जाये, तब वह तेल नीचे दब जायेगा क्या? अथवा ऊपर आयेगा? ठीक है ऊपर आयेगा। कहाँ तक ऊपर आयेगा? जहाँ तक दूध है, उसके ऊपर तो नहीं जायेगा। उसे भी सहारा, साधन चाहिए। इसी तरह अघातिया कर्म दूर होने के उपरान्त वे सिद्धपरमेष्ठी कहाँ जाते हैं? ऊपर की ओर जाते हैं। कहाँ रुक जाते हैं? सिद्ध शिला में रुक जाते हैं। उसके ऊपर क्यों नहीं जाते? उनके पास तो अनंत शक्ति है, फिर और भी ऊपर जाना चाहिए। अनंत आकाश पड़ा है, जाते रहना चाहिए, उनको रोकने वाला कौन? तो आप बोलेंगे “धर्मास्तिकायाभावात्” धर्मास्तिकाय का अभाव है, इसलिये ऊपर नहीं जा पाते, तो मैं पूछता हूँ कि एक अनंत शक्ति के धारक सिद्ध परमात्मा को भी परद्रव्य के आलंबन की आवश्यकता पड़ी। मतलब बिना निमित्त के उनका काम नहीं चल सकता। धर्मास्तिकाय निमित्त के बिना वे ऊपर नहीं जा पाये, तो हम-तुम लोग निमित्त की उपेक्षा करें, तो हमारा जीवन कैसे चलेगा? सम्यग्दर्शन से लेकर मोक्ष तक निमित्त भी उपादान के साथ काम करता रहता है, अतः अनेकान्त को समझने वाले लोगों को कभी निमित्त को छोड़ने की बात नहीं करना चाहिए। आप लोगों के उपादान में कुछ तो हमारे चातुर्मासरूपी निमित्त की आवश्यकता रही होगी, इसलिये तो आप लोगों ने नारियल चढ़ाकर चातुर्मास का निवेदन किया। यह नारियल श्री फल भी कहलाता है, श्री का अर्थ लक्ष्मी होता है, जो मोक्ष लक्ष्मी प्रदान करे, उसे श्रीफल कहते हैं। वैसे लक्ष्मी तीन प्रकार की होती है-पहली अन्तरंग लक्ष्मी अर्थात् अनंत चतुष्टय, दूसरी है बहिरंग लक्ष्मी-समवशरण आदि विभूति और तीसरी है मोक्ष लक्ष्मी। इन तीनों की पूजा, चाहना करनी चाहिए, अन्य किसी सरागी की नहीं। नारियल जब चढ़ाते हैं, तब उसकी चोटी ऊपर की ओर रखते हैं। इससे वह मुक्ति जाने की भावना प्रगट करता है। इसलिए उसका श्रीफल भी नाम सार्थक है। इस प्रकार हम लोगों ने एक नारियल या श्रीफल के उदाहरण से मोक्षमार्ग को समझ लिया। यह शार्ट एण्ड स्वीट उदाहरण देने मात्र से आपका काम चल जायेगा। अब चातुर्मास में मौन बैठ सकते हैं, लेकिन आप लोगों के संकेत से मालूम पड़ा कि आप बहुत कुछ सुनना चाहते हैं। मैं रोज सुबह-शाम सुना सकता हूँ, आपके बंधन में बंधकर नहीं अपने व्रतों के बंधन को मुख्यता देते हुए शास्त्र सुनाऊँगा। इस श्रीफल की ही यात्रा को विस्तृत करके सुनाऊँगा, जिससे आपको शीघ्रतिशीघ्र मोक्ष फल की प्राप्ति हो।

असंख्यात गुणी निर्जरा शुभोपयोग में भी

मुनि श्री निर्णय सागर जी

यद्यपि कर्मों की निर्जरा सभी संसारी जीवों के सदा काल होती रहती है। फिर प्रश्न खड़ा होता है कि संसार के सामान्य जीवों और मोक्षमार्गी जीवों में क्या अंतर शेष रहता है, जिससे मोक्षमार्गीयों को श्रेष्ठ माना जाता है। उन्हें पूज्य माना जाता है?

समाधान - दोनों के निर्जरा होने पर भी संसारी जीवों के संवर पूर्वक निर्जरा नहीं होती है, जबकि मोक्षमार्गी जीवों के संवर पूर्वक निर्जरा पाई जाती है। बतौर उदाहरण हम समझें कि नदी में दो नाव हैं, दोनों नाव में छिद्र हैं और छिद्रों से पानी नाव में आ रहा है। दोनों नाव के नाविक तथा यात्रीगण नाव से बराबर जल निकाल रहे हैं, किन्तु एक नाव का नाविक अपनी बुद्धि का प्रयोग करता है और पानी निकलने के छिद्रों में डांट लगाकर पानी निकालना प्रारम्भ कर देता है। दूसरी नाव के नाविक ने बिना डांट लगाये ही पानी निकालना प्रारम्भ कर दिया। अब आप ही बतायें कि दोनों नाविकों में से कौन सा श्रेष्ठ है? उत्तर होगा जिसने नाव के छिद्रों में डांट लगाकर पानी निकालना प्रारम्भ किया है। ठीक इसी प्रकार मोक्षमार्गी, सामान्य संसारी जीवों की तुलना में श्रेष्ठ है। पूज्य है। इतनी ही नहीं मोक्षमार्गी संवर पूर्वक सामान्य निर्जरा तो करता ही है, पर विशेष तप आदि के माध्यमों से भी कर्म निर्जरा करता रहता है। इसी प्रकार की विशेष निर्जरा ही अविपाक निर्जरा कहलाती है।

आचार्यों ने निर्जरा के दो भेद कहे हैं - 1. सविपाक निर्जरा 2. अविपाक निर्जरा। जो कर्म फल देकर अपने आप समयानुसार खिर जाते हैं, वह सविपाक निर्जरा कहलाती है और जो कर्म तप, व्रत, संयम आदि विशेष उद्यम करके निर्जरा को प्राप्त होते हैं, वह अविपाक निर्जरा कहलाती है। अतः मोक्षमार्गी के सविपाक और अविपाक दोनों ही निर्जरा होती है। हमारी चर्चा का विषय है - असंख्यात गुणी निर्जरा शुभोपयोग में भी।'' इस प्रसंग में यह भी जान लेना परमावश्यक है कि शुभोपयोग कहाँ से कहाँ तक होता है। उपयोग आत्मा का लक्षण है। वह मूल में दो प्रकार का होता है:- शुद्धोपयोग, अशुद्धोपयोग। अशुद्धोपयोग के भी दो भेद होते हैं:- शुभोपयोग, अशुभोपयोग। प्रथम से छठे गुणस्थान तक अशुद्धोपयोग (अशुभोपयोग, शुभोपयोग) तथा सप्तम गुणस्थान से 12 वें गुणस्थान तक शुद्धोपयोग कहा गया है। इसके आगे अर्थात् 13 वां व 14 वां गुणस्थान शुद्धोपयोग का फल है। इस प्रकार के उपयोग विभाजन में कहीं पर भी (किसी भी आचार्य प्रणीत शास्त्रों से) विरोध नहीं है। हमें विस्मय तब होता है जब कुन्दकुन्द, उमास्वामी जैसे महान् आचार्यों की बात करने वाले कुछ लोग चतुर्थ गुणस्थान से शुद्धोपयोग कहते आ रहे हैं। जबकि आचार्यों के उपयोग विभाजन से ज्ञात होता है कि चतुर्थ गुणस्थान

से व सप्तम गुणस्थान से नीचे शुभोपयोग है न कि शुद्धोपयोग। यह निश्चित है कि चतुर्थ गुणस्थान से अर्थात् सम्यक्दृष्टि गुणस्थान से असंख्यात गुणी निर्जरा अवश्य होती किन्तु शुद्धोपयोग नहीं।

किसी महानुभाव को शंका हो सकती है कि चतुर्थ गुणस्थान में शुद्धोपयोग मानने में बाधा ही क्या है? क्योंकि चतुर्थ गुणस्थान में अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ का अभाव पाया जाता है। समाधान रूप में यह कहना चाहूंगा कि अनंतानुबंधी क्रोधादि कषायों का अभाव तो, नीचे तीसरे आदि गुणस्थानों में संभव है, फिर वहाँ भी शुद्धोपयोग क्यों नहीं मानते हो, अतः अनंतानुबंधी का अभाव मात्र शुद्धोपयोग का कारण नहीं हो सकता है। शुद्धोपयोग के पात्र तो मुनिराज ही होते हैं। शुद्धोपयोग के संदर्भ में देखिए, आचार्य नेमिचंद्र सिद्धान्तिदेव बृहद् द्रव्य-संग्रह ग्रन्थ की गाथा 47 में कहते हैं -

दुवियंपि मोक्खहेउं झाणो पाउणदि जं मुणी णियमा।

तम्हा पयत्तचित्ता जूयं झाणं समब्भसय ॥ 47 ॥

अर्थात् दोनों (निश्चय और व्यवहार) मोक्षमार्गी मुनि को ही प्राप्त होते हैं। निश्चय मोक्षमार्गी और शुद्धोपयोग एकार्थवाची हैं। इसलिए मुनियोगी को ध्यान द्वारा शुद्धोपयोग के लिए सम्यक् अभ्यास करना चाहिए।

इसी प्रकार आचार्य कुन्दकुन्द महाराज प्रवचनसार ग्रन्थ के ज्ञानाधिकार में गाथा 14 में मुनियों को ही शुद्धोपयोगी सिद्ध होता है। ऐसा कहा है

सुविदिद पयत्थसुत्तो संजमतवसंजुदो विगद रागो।

समणो समसुहदुक्खो, भणिदो सुद्धवओगोत्ति ॥4 ॥

जो तत्त्वज्ञानी होकर संयम, तप से संयुक्त हैं। राग रहित हैं। सुख-दुःख में समता धारण करते हैं। उनके ही शुद्धोपयोग होता है।

आचार्य उमास्वामी महाराज ने तत्त्वार्थ सूत्र के 9 वें अध्याय के 45 वें सूत्र में कहा है-सम्यक्दृष्टिश्रावकविरतानंत वियोजक दर्शनमोह क्षपकोपशमकोपशांतमोहक्षपकक्षीणमोह जिनाः क्रमशोऽसंख्येय गुणनिर्जराः॥ अर्थात् सम्यक्दृष्टि के सामान्य से असंख्यातगुणी निर्जरा होती है। सम्यक्दृष्टि से श्रावक (पंचम गुणस्थानवर्ती) के असंख्यात गुणी निर्जरा, इससे महाव्रती (षष्ठ गुणस्थान) के असंख्यात गुणी निर्जरा, इससे अनंतानुबंधी विसंयोजना करने वाले के असंख्यात गुणी इससे आगे दर्शनमोह का क्षपक, उपशम श्रेणी, उपशांत मोह, क्षपक श्रेणी, क्षीणमोह तथा जिन (संयोग केवली)के भी असंख्यात-असंख्यात गुणी आगे-आगे निर्जरा होती है।

इसी प्रकार आचार्य वीरसेन महाराज षट्खंडागम की टीका धवला पु. 6, पृष्ठ 427 पर लिखते हैं :-

दर्शनेन जिनेन्द्राणां पाप संघात कुंजरम् ।

शतथा भेदमायाति गिरि वज्र हतो यथो ॥

अर्थात् - जिस प्रकार वज्रपात होने से नष्ट किये जाने पर पर्वत के सैकड़ों टुकड़े हो जाते हैं, उसी प्रकार जिनेन्द्र भगवान् के दर्शन से मिथ्यात्व जैसे घोर पापों का समूह नष्ट हो जाता है, अर्थात् निर्जरित हो जाता है। दर्शन पाठ में भी हम प्रतिदिन पढ़ते हैं-

दर्शनेन जिनेन्द्राणां साधुनाम् वंदनेन च ।

न चिरं तिष्ठते पापं, छिद्र हस्ते यथोदकम् ॥

अर्थात् - जिस प्रकार छिद्रयुक्त हाथ में जल की गति होती है, वह अधिक समय तक अंजुलि में नहीं ठहर सकता है। वैसे ही जिनेन्द्र भगवान् के दर्शन से और वीतरागी साधुओं की वंदना करने से पाप कर्म शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार आचार्य वाक्यों से भी शुभोपयोगी के कर्म निर्जरा सिद्ध होती है। क्योंकि भगवान् के दर्शन करते समय शुभोपयोग ही होता है, न कि शुद्धोपयोग। यहाँ ऐसा भी न समझें कि शुद्धोपयोगी और शुद्धोपयोग की उपेक्षा की जा रही है। शुद्धोपयोगी और शुद्धोपयोग तो महान् हैं ही इनकी अपेक्षा तो शुभोपयोग लघु था, लघु है, लघु ही रहेगा किन्तु बात इतनी ही है कि शुभोपयोग बंध का कारण ही नहीं है, उससे संवर निर्जरा भी होती है। किसी का प्रश्न होगा कि आस्रव बंध और संवर निर्जरा दो भिन्न तथा विपरीत हैं यह एक कारण से दो कार्य कैसे संभव होंगे? इसका समाधान कार्यकारण-व्यवस्था में कर दिया गया है कि आचार्य अकलंक देव राजवार्तिक में कहते हैं:- **एक कारणेनानेक कार्यं संभवात् वह्निवत् ।** जैसे अग्नि, प्रकाश, प्रताप, पाचक आदि कार्य करने में समर्थ हैं वैसे यहाँ भी एक कारण से आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा होने में विरोध नहीं है।

फिर प्रश्न होगा - शुभोपयोग से आस्रव बंध और शुद्धोपयोग से संवर निर्जरा क्यों नहीं मानते हो?

समाधान - हमें मानने में कुछ भी विरोध नहीं है किन्तु कहीं पर किन्हीं आचार्य प्रणीत शास्त्र में इसका उल्लेख मिलना चाहिए। किसी भी आचार्य प्रणीत शास्त्र में एक साथ दो उपयोग का विधान न मिला है, न मिलने की संभावना है। अशुभोपयोग, शुभोपयोग दोनों अशुद्धोपयोग एकान्त से समान नहीं हैं। अशुभोपयोग से एक पाप कर्म का ही बंध होता है, जबकि शुभोपयोग से पुण्यकर्मों का आस्रव, बंध तथा पाप कर्मों का संवर, निर्जरा भी होते हैं। यहाँ निर्जरा से तात्पर्य अविपाक निर्जरा ग्रहण करना चाहिए। क्योंकि सविपाक निर्जरा तो सभी संसारी जीवों के हमेशा होती रहती है। कुछ लोग अशुभोपयोग, शुभोपयोग को समान मानकर

पात्रदान, जिनेन्द्र अर्चना, महामंत्र जाप, वैयावृत्ति, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान आदि शुभ कार्यों को बंध का ही कारण कहते हैं। विचार करो यदि साधक इन शुभ कार्यों को छोड़ दे, तो क्या होगा? अशुभ कार्यों में लग जावेगा। श्रावक के शुद्धोपयोग नहीं होता, मुनिराज हमेशा शुद्धोपयोगी रह सकते नहीं। किन्तु कर्म निर्जरा पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक व छठे गुणस्थानवर्ती मुनिराज के भी असंख्यात गुणी निर्जरा हमेशा होती रहती है। श्रावक और सविकल्प मुनिराज के जब शुद्धोपयोग (निर्विकल्प समाधि) का अभाव होता है तब शुभ क्रियाओं के अवलंबन से ही विपुल कर्म निर्जरा होती है। तत्त्वार्थसूत्र ग्रन्थ में अणुव्रत महाव्रतों को आस्रव तत्त्व रूप कहा गया है। ऐसा एक ग्रन्थ में ग्रन्थकार ने तत्त्वार्थ सूत्र का उद्धरण दिया है। वहाँ प्रसंग में उनको इतना ही दिखाई दिया। जबकि तत्त्वार्थसूत्र के छठे अध्याय में कहा है- "सराग संयम संयमासंयमा-कामनिर्जरा बाल तपांसि देवस्य" ॥20 ॥ अर्थात् सरागसंयम, संयमासंयम, अकाम निर्जरा, बालतप यह देवायु के कारण हैं। इसके आगे एक सूत्र और है - "सम्यक्त्वं च" ॥ 21 ॥ सम्यक्दर्शन भी देवायु का कारण है। खेद का विषय है कि लेखक अधूरी बात क्यों लिखते हैं। एक सूत्र की बात लिखी वह भी अधूरी। सरागसंयम, संयमासंयम शब्द महाव्रत-अणुव्रत के साथ भावसंयम के वाचक हैं तथा यदि आस्रव के कारण हैं तो सम्यक्त्व भी आस्रव का कारण है, ऐसा क्यों नहीं कहते हैं तथा तत्त्वार्थसूत्र के छठवें अध्याय के साथ नौवें अध्याय भी पढ़ लेते। नौवें अध्याय में लिखा गया है-

आस्रव निरोधः संवरः ॥1 ॥

स गुप्ति समिति धर्मानुप्रेक्षा परीषहजय चारित्रैः ॥2 ॥

तपसा निर्जरा च ॥3 ॥

नौवें अध्याय में तीन गुप्ति, पाँच समिति, दस धर्म, बारह अनुप्रेक्षा, बाईस परीषह और पाँच चारित्र को संवर, निर्जरा के कारणों में रखा है। यदि छठवें अध्याय में सरागसंयम, संयमासंयम का अर्थ द्रव्य संयम (अणुव्रत-महाव्रत) ही हैं, तो नौवें अध्याय में भी चारित्र से द्रव्य चारित्र (पाँच महाव्रत आदि) लेना चाहिए। वहाँ क्षुधा, तृषा आदि परीषहों को भी संवर निर्जरा के कारणों में गिना है बाह्य तपों को भी संवर निर्जरा के कारणों में रखा है। इन प्रसंगों को क्यों छोड़ दिया, तत्त्वनिर्णय के क्षेत्र में एकान्त नहीं होना चाहिए, यदि होगा तो सही तत्त्वनिर्णय नहीं माना जायेगा। जिसका तत्त्वनिर्णय गलत है वह सम्यक्दृष्टि कैसे हो सकता है?

अतः उपरोक्त संवर, निर्जरा की मीमांसा हमें सार रूप में संकेत करती है कि शुद्धोपयोगी संवर, निर्जरा का स्वामी है परन्तु शुभोपयोग की अवस्था में भी संवर, निर्जरा होती है। शुभोपयोग जब तक अमृत तुल्य है तब तक शुद्धोपयोग नहीं होता है।

नवकोटि विशुद्धि

स्व. पं. मिलापचन्द्र जी कटारिया

जिन आहारादि के उत्पादन में मुनि का मन, वचन, काय के द्वारा कृत कारित अनुमोदितरूप कुछ भी योगदान न हो ऐसा आहारादि का लेना मुनि के लिए नवकोटि विशुद्धिदान कहलाता है। अर्थात् जो आहारादि मुनि के मन के द्वारा कृत-कारित-अनुमोदित न हो, न उनके वचन के द्वारा कृत-कारित अनुमोदित हो ऐसे आहारादि का दान नवकोटि विशुद्धि दान कहलाता है। मतलब कि देयवस्तु के सम्पादन में मुनि का कुछ भी सम्पर्क नहीं होना चाहिये इससे आहारादि के निमित्त हुआ आरम्भ दोष मुनि को नहीं लगता है। वरना वह मुनि अधःकर्म जैसे महादोष का भागी होता है। अनेक ग्रन्थों में नवकोटि विशुद्धि का यही स्वरूप लिखा मिलता है। किन्तु आचार्य जिनसेन ने आदि पुराण पर्व 20 में नवकोटि विशुद्धि का एक अन्य स्वरूप भी लिखा है। यथा-

दातु विशुद्धता देयं पात्रं च प्रपुनाति सा।

शुद्धिर्देयस्य दातारं पुनीते पात्रमप्यदः ॥136 ॥

पात्रस्य शुद्धिर्दातारं देयं चैव पुनात्यतः।

नवकोटि विशुद्धं तद्दानं भूरिफलोदयम् ॥137 ॥

अर्थ - दाता की शुद्धि देय और पात्र को पवित्र बनाती है, देय की शुद्धि दाता और पात्र को शुद्ध करती है एवं पात्र की शुद्धि दाता देय को पवित्र करती है। इस प्रकार का नव कोटि शुद्ध दान प्रचुर फल का देने वाला होता है।

इसमें जो लिखा है उसका अभिप्राय ऐसा है कि दाता, देय (दान का द्रव्य) और पात्र (दान लेने वाला) इन तीनों में यदि तीनों ही अशुद्ध हों, तब तो वह दानविधि दोषास्पद है ही। किन्तु इन तीनों में से कोई भी दो अशुद्ध हों और एक शुद्ध हो, तो उस हालत में भी वह दान दोषास्पद ही है। यही नहीं तीनों में से यदि दो शुद्ध हों और सिर्फ एक ही कोई सा अशुद्ध हो, तब भी वह दानविधि दोषास्पद ही समझनी चाहिए। मतलब कि दानविधि में दाता, देय और पात्र ये तीनों निर्दोष होने चाहिए तब ही वह बहुत फल को दे सकती है। तीनों में कोई सा एक भी यदि सदोष होगा तो वह दान विधि प्रशस्त नहीं मानी जा सकती।

उक्त श्लोकद्वय में लिखा है कि दाता की शुद्धि देय और पात्र को पवित्र बनाती है। इस तरह लिखने का भाव यह है कि यद्यपि देय और पात्र शुद्ध हैं मगर दाता अशुद्ध है तो इस एक की

अशुद्धि सब दानविधि को सदोष बना देगी और दाता व पात्र शुद्ध हैं मगर देय कहिए दान का द्रव्य अशुद्ध है, तो यहाँ भी इस एक की अशुद्धि ही समस्त दानविधि को सदोष बना डालेगी। इसी तरह दाता और देय शुद्ध हैं मगर पात्र अशुद्ध है, तो वह दानविधि भी सारी की सारी सदोष ही समझी जाएगी।

जिनसेनाचार्य का यह कथन पं. आशाधर ने सागरधर्माभूत अध्याय 5 श्लोक 47 की टीका में तथा अनगरधर्माभूत के 5वें अध्याय के अन्त में और शुभचन्द्र ने कार्तिकेयानुप्रेक्षा की गाथा 390 की टीका में उद्धृत किया है।

किन्तु सोमदेव ने यशस्तिलक के निम्न श्लोक में जिनसेन के उक्त कथन के विरुद्ध लिखा है -

भुक्तिमात्रप्रदाने हि का परीक्षा तपस्विनाम्।

ते संतः सन्त्वंतां वा गृही दानेन शुद्ध्यति ॥ 818 ॥

अर्थ - भोजन मात्र के देने में साधुओं की क्या परीक्षा करनी? वे चाहे श्रेष्ठ हों या हीन हों। गृहस्थ तो उन्हें दान देने से शुद्ध हो ही जाता है।

सोमदेव ने इस श्लोक में यह शिक्षा दी है कि मुनि को आहार दान देते वक्त गृहस्थ को यह नहीं देखना चाहिए कि यह मुनि आचारवान् है या आचार भ्रष्ट है। उसकी जाँच-पड़ताल करने की जरूरत नहीं है। मुनि चाहे कैसा ही अच्छा बुरा क्यों न हो, गृहस्थ को तो आहारदान देने का अच्छा ही फल मिलेगा।

सोमदेव का ऐसा लिखना जिनसेनाचार्य की आम्नाय के विरुद्ध है, क्योंकि जिनसेन ने ऊपर यह प्रतिपादन किया है कि पात्र की शुद्धि दाता और देय दोनों को पवित्र बनाती है। प्रकारांतर से इसी को यों कहना चाहिए कि पात्र की (दान लेने वाले साधु की) अशुद्धि दाता और देय को भी अशुद्ध बना देती है। भावार्थ- उत्तमदाता और उत्तम देय के साथ-साथ दान लेने वाला भी सुपात्र होना चाहिए तब ही दानी को दान का यथेष्ट फल मिलता है।

महर्षि जिनसेन और सोमदेव के इन परस्पर विरुद्ध वचनों में किनका वचन प्रमाण माना जाए, यह निर्णय हम विचारशील पाठकों पर ही छोड़ते हैं।

जैन निबन्ध रत्नावली भाग-2 से साभार

महावीर का श्रावक वर्ग तब और अब :

एक आत्मविश्लेषण

प्रो. सागरमल जैन

लेखक जैन जगत् के सुप्रसिद्ध श्वेताम्बर विद्वान् हैं। आप सन् 1978 तक शा. स्नातकोत्तर हमीदिया महाविद्यालय भोपाल में दर्शन विभाग में अध्यक्ष थे। तत्पश्चात् बीस वर्ष तक प्राचीनतम जैन शोध संस्थान पार्श्वनाथ विद्यापीठ वाराणसी में निदेशक पद पर आसीन रहे। आप अच्छे चिन्तक और लेखक हैं। आपकी लेखनी से अनेक शोधग्रन्थ प्रसूत हुए हैं। प्रस्तुत लेख में आपने श्रावक के बदलते स्वरूप का गहराई से विश्लेषण किया है, जो विचारों को उद्वेलित करता है।

सम्पादक

प्रस्तुत आलेख में हमारा प्रतिपाद्य भगवान् महावीर की श्रावक संस्था की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में समीक्षा करना है।

जैन धर्म निवृत्तिपरक धर्म है। संन्यास की अवधारणा निवृत्तिपरक धर्मों का हार्द है। इस आधार पर सामान्यतया यह माना जाता रहा है कि निवृत्तिमार्गीय श्रमण परम्परा में गृहस्थ का वह स्थान नहीं रहा, जो कि प्रवृत्तिमार्गीय हिन्दू परम्परा में उसे प्राप्त था। प्रवृत्तिमार्गीय परम्परा में गृहस्थ आश्रम को सभी आश्रमों का आधार माना गया था। यद्यपि श्रमणपरम्परा में संन्यास धर्म की प्रमुखता रही, किन्तु यह समझ लेना भ्रांतिपूर्ण होगा कि उसमें गृहस्थ धर्म उपेक्षित रहा। वे श्रमण परम्पराएँ जो, संघीय व्यवस्था को लेकर चिकसित हुईं, उनमें गृहस्थ या उपासक वर्ग को भी महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। भारतीय श्रमण परम्परा में जैन, बौद्ध आदि ऐसी परंपराएँ थीं, जिन्होंने संघीय साधना को महत्त्व दिया। भगवान् महावीर ने अपनी तीर्थ स्थापना में श्रमण, श्रमणी, श्रावक और श्राविका रूप चतुर्विध तीर्थ की स्थापना की। भगवान् महावीर की परम्परा में ये चारों ही धर्मसंघ के प्रमुख स्तम्भ माने जाते हैं। उन्होंने अपनी संघ व्यवस्था में गृहस्थ उपासक एवं उपासिकाओं को स्थान देकर उनके महत्त्व को स्वीकार किया है। महावीर की संघव्यवस्था साधना के क्षेत्र में स्त्रीवर्ग और गृहस्थवर्ग दोनों के महत्त्व को स्पष्ट रूप से स्वीकार करती है।

भगवान् महावीर ने अपने धर्ममार्ग में साधना एवं संघ व्यवस्था की दृष्टि से गृहस्थ को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया था। यदि मध्यवर्ती युगों को देखें तो यह बात अधिक सत्य प्रतीत होती है, क्योंकि मध्ययुग में भी जैनधर्म और संस्कृति को सुरक्षित रखने में गृहस्थवर्ग का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। उन्होंने न केवल भव्य जिनालय बनवाये और ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ करवाकर साहित्य

की सुरक्षा की, अपितु अपने त्याग से संघ और समाज की सेवा भी की। यदि हम वर्तमान काल में जैनधर्म में गृहस्थ वर्ग के स्थान और महत्त्व के सम्बन्ध में विचार करें, तो आज भी स्पष्ट रूप से ऐसा लगता है कि जैन धर्म के संरक्षण और विकास की अपेक्षा से आज भी गृहस्थ वर्ग का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सम्पूर्ण भारत में एक प्रतिशत जनसंख्या वाला यह वर्ग समाज-सेवा और प्राणी सेवा के क्षेत्र में आज भी अग्रणी स्थान रखता है। देश में जनता के द्वारा संचालित जनकल्याणकारी संस्थाओं अर्थात् विद्यालय, महाविद्यालय, चिकित्सालय, गोशालाएँ, पांजरापोल, अल्पमूल्य की भोजनशालाओं आदि की परिगणना करें, तो यह स्पष्ट है कि देश में लगभग 30 प्रतिशत लोकसेवी संस्थाएँ जैन समाज के द्वारा संचालित हैं। एक प्रतिशत की जनसंख्या वाला समाज यदि 30 प्रतिशत की भागीदारी देता है, तो उसके महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता। एक दृष्टि से देखें तो महावीर के युग से लेकर आज तक जैनधर्म, जैनसमाज और जैनसंस्कृति के संरक्षण का महत्त्वपूर्ण दायित्व श्रावक वर्ग ने ही निभाया है, चाहे उसे प्रेरणा और दिशाबोध श्रमणों से प्राप्त हुआ हो। इस प्रकार सामान्य दृष्टि से देखने पर महावीर के युग और आज के युग में कोई विशेष अंतर प्रतीत नहीं होता है।

किन्तु जहाँ चारित्रिक निष्ठा के साथ सदाचारपूर्वक नैतिक आचार का प्रश्न है, आज स्थिति कुछ बदली हुई प्रतीत होती है। महावीर के युग में गृहस्थ साधकों में धनबल और सत्ताबल की अपेक्षा चारित्रबल अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता था। वर्तमान संघीय व्यवस्था में गृहस्थवर्ग का महत्त्वपूर्ण स्थान तो स्वीकार किया जाता है, किन्तु इन बदली हुई परिस्थितियों में चारित्र बल की अपेक्षा गृहस्थ का धनबल और सत्ताबल ही प्रमुख बन गया है। समाज में न तो आज चारित्रवान् श्रावकसाधकों का और न

ही विद्वत् वर्ग का ही कोई महत्त्वपूर्ण स्थान है। आज जैनधर्म की सभी शाखाओं ने समाज पर, समाज पर ही क्या कहें, मुनिवर्ग पर भी धनबल और सत्ताबल का ही प्राधान्य है। महावीर के युग में और मध्यकाल में भी उन्हीं श्रावकों का समाज पर वर्चस्व था, जो संघीय हित के लिए तन-मन-धन से समर्पित होते थे। फिर वे चाहे सम्पत्तिशाली हों या आर्थिक अपेक्षा से निर्धन ही क्यों न हों। आज हम यह देखते हैं कि समाज के शीर्षस्थानों पर वे ही लोग बैठे हुए हैं, जिनकी चारित्रिक निष्ठा पर अनेक प्रश्नचिह्न लगे हुए हैं।

यदि हम तुलनात्मक दृष्टि से विचार करें, तो ऐसा लगता है कि महावीर के युग की अपेक्षा आज आत्मनिष्ठ गृहस्थ साधकों की संख्या में कमी आई है। यदि हम महावीर के युग की बात करते हैं, तो वह बहुत पुरानी हो गई, यदि निकटभूत अर्थात् उन्नीसवीं शती की बात को ही लें, तो ईस्ट इण्डिया कम्पनी के काल के जो समाज आधारित आपराधिक आंकड़े हमें उपलब्ध होते हैं उनका विश्लेषण किया जाए तो स्पष्ट लगता है कि उस युग में जैनों में आपराधिक प्रवृत्ति का प्रतिशत लगभग शून्य था। यदि हम आज की स्थिति देखें, तो छोटे-मोटे अपराधों की बात तो एक ओर रख दें, देश के महाअपराधों की सूची पर ही दृष्टि डालें तो चाहे घी में चर्बी मिलाने का काण्ड हो, चाहे अलकबीर के कारखाने में तथाकथित जैन-भागीदारी का प्रश्न हो अथवा बड़े-बड़े आर्थिक घोटाले हों, हमारी साख कहीं न कहीं गिरी है। एक शताब्दी पूर्व तक सामान्य जनधारणा यह थी कि आपराधिक प्रवृत्तियों का जैन समाज से कोई नाता रिश्ता नहीं है, लेकिन आज की स्थिति यह है कि आपराधिक प्रवृत्तियों के सरगनाओं में जैन समाज के लोगों के नाम आने लगे हैं। इससे लगता है कि वर्तमान युग में हमारी ईमानदारी और प्रामाणिकता पर अनेक प्रश्न चिह्न लग चुके हैं तब की अपेक्षा अब अणुव्रतों के पालन की आवश्यकता अधिक है।

एक युग था जब श्रावक से तात्पर्य व्रती श्रावक ही होता था। तीर्थंकरों के युग में जो हमें श्रावकों की संख्या उपलब्ध होती है वह संख्या श्रद्धाशील श्रावकों की संख्या नहीं, बल्कि व्रती श्रावकों की है। किन्तु आज स्थिति बिल्कुल बदलती हुई नजर आती है, यदि आज हम श्रावक का तात्पर्य ईमानदारी एवं निष्ठापूर्वक श्रावक व्रतों के पालन करने वालों से लें, तो हम यह पाएँगे कि उनकी संख्या हमारे श्रमण और श्रमणीवर्ग की अपेक्षा कम ही होगी। यद्यपि यहाँ कोई कह सकता है कि व्रत ग्रहण करने वालों के आँकड़े तो कहीं अधिक हैं, किन्तु मेरा तात्पर्य मात्र व्रत ग्रहण करने से नहीं, किन्तु उसका परिपालन कितनी ईमानदारी और निष्ठा से हो रहा है इस बात से है। महावीर ने

गृहस्थ वर्ग को श्रमणसंघ के प्रहरी के रूप में उद्धोषित किया था। यदि हम सूदूर अतीत में न जाकर केवल अपने निकट अतीत को ही देखें, तो यह स्पष्ट है कि आज गृहस्थ ने केवल अपने कर्त्तव्यों और दायित्वों को भूल बैठा है, बल्कि वह अपनी अस्मिता को भी खो बैठा है। आज यह समझा जाने लगा है कि धर्म और संस्कृति का संरक्षण तथा आध्यात्मिक साधना सब कुछ श्रमण संस्था का कार्य है, गृहस्थ तो मात्र उपासक है। उसके कर्त्तव्यों की इतिश्री साधु साध्वियों को दान देने अथवा उनके द्वारा निर्देशित संस्था को दान देने तक सीमित है। आज हमें इस बात का अहसास करना होगा कि जैनधर्म की संघ-व्यवस्था में हमारा क्या और कितना गरिमामय स्थान है? चर्तुविध संघ के चार पायों में यदि एक भी पाया चरमराता या टूटता है, तो दूसरे का अस्तित्व भी निरापद नहीं रह सकता है। यदि श्रावक अपने दायित्व और कर्त्तव्य को विस्मृत करता है, तो संघ के अन्य घटकों का अस्तित्व भी निरापद नहीं रह सकता। आज के साधुवर्ग और श्रावकवर्ग के पारस्परिक सम्बन्धों को देखकर यह शेर बरबस याद आता है- “हम तो डूबेंगे सनम, तुम्हें भी ले डूबेंगे”। चाहे यह बात कहने में कठोर हो लेकिन एक स्पष्ट सत्य है कि आज का हमारा श्रमण और श्रमणीवर्ग शिथिलाचार में आकण्ठ डूबता जा रहा है। यहाँ मैं किसी सम्प्रदाय-विशेष की बात नहीं कर रहा हूँ और न मेरा यह आक्षेप उन पूज्य मुनिवृन्दों के प्रति है जो निष्ठापूर्वक अपने चारित्र का पालन करते हैं यहाँ मेरा इशारा एक सामान्य स्थिति से है।

यह सत्य है कि अन्य वर्गों की अपेक्षा जैन श्रमण संस्था कहीं न कहीं एक आदर्श प्रतीत होती है, फिर भी यदि हम उसके अन्तः में झाँककर देखते हैं तो कहीं न कहीं हमें हमारे आदर्श और निष्ठा को ठेस तो अवश्य लगती है। आज जिन्हें हम आदर्श और वन्दनीय मान रहे हैं, उनके जीवन में छल-छद्म, दुराग्रह और अहम् के पोषण की प्रवृत्तियाँ तथा वासना के जीवन के प्रति ललक को देखकर मन पीड़ा से भर उठता है। किन्तु उनके इस पतन का उत्तरदायी कौन है, क्या वे स्वयं ही हैं? वास्तविकता यह है कि उनके इस पतन का उत्तरदायित्व हमारे श्रावक वर्ग पर भी है। या तो हमने उन्हें इस पतन के मार्ग की ओर अग्रसर किया है या कम से कम उसके सहयोगी बने हैं। साधु-साध्वियों में शिथिलाचार, संस्थाओं के निर्माण की प्रतिस्पर्धा और मठवासी प्रवृत्तियाँ आज जिस तेजी से बढ़ रही हैं, वह मध्यकालीन चैत्यवासी और भट्टारक परम्परा, जिसकी हम आलोचना करते नहीं अघाते, उससे भी कहीं आगे हैं। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि साधु-साध्वियों में जो शिथिलाचार बढ़ा है वह हमारे सहयोग से ही बढ़ा है। यह सत्य है कि आज

श्रावक, उनमें भी विशेष रूप से सम्पन्न श्रावक, धर्म के नाम पर होने वाले बाह्य आडम्बरों में अधिक रुचि ले रहे हैं। आध्यात्मिक साधना के स्थान पर वह प्रदर्शनप्रिय हो रहा है। धर्म प्रभावना का नाम लेकर आज के तथाकथित श्रावक और उनके तथाकथित गुरुजन दोनों ही अपने अहं और स्वार्थों के पोषण में लगे हैं। आज धर्म की खोज अन्तरात्मा में नहीं, भीड़ में हो रही है। हम भीड़ में रहकर अकेले रहना नहीं जानते, अपितु कहीं अपने अस्तित्व और अस्मिता को भी भीड़ में ही विसर्जित कर रहे हैं। आज वही साधु और श्रावक अधिक प्रतिष्ठित होता है, जो भीड़ इकट्ठी कर सकता है। बात कठोर है, किन्तु सत्य है। आज जो मजमा जमाने में जितना कुशल होता है, वही अधिक प्रतिष्ठित भी होता है।

आज सेवा की अपेक्षा सेवा का प्रदर्शन अधिक महत्त्वपूर्ण बनता जा रहा है। मैं पश्चिम के लायन्स और रोटरी क्लबों की बात ही नहीं करता, किन्तु आज के जैनसमाज के विकसित होने वाले सोशल ग्रुप की भी बात करना चाहता हूँ। हम अपने हृदय पर हाथ रखकर पूछें कि क्या वहाँ सेवा के स्थान पर सेवा का प्रदर्शन अधिक नहीं हो रहा है? मेरे इस आक्षेप का यह आशय नहीं है कि सोशल ग्रुप जैसी संस्थाओं का मैं आलोचक हूँ, वास्तविकता तो यह है कि आज समाज, संस्कृति और धर्म को बचाए रखना है, तो ऐसी संस्थाओं की नितांत आवश्यकता है। मैं तो यहाँ तक कहता हूँ कि आज एक मंदिर, उपाश्रय या स्थानक कम बने और उसके स्थान पर गाँव-गाँव में जैनों के सोशल क्लब खड़े हों, किन्तु उनमें हमारे धर्म, दर्शन और संस्कृति का संरक्षण होना चाहिए। आचार की मर्यादाओं का पालन होना चाहिए। आज के युवा में जैन संस्कारों के बीजों का वपन हो और वे विकसित हों, इसलिए ऐसे सामाजिक संगठन आवश्यक हैं, किन्तु यदि उनमें पश्चिम की अंधी नकल से हमारे सांस्कृतिक मूल्य और सांस्कृतिक विरासत समाप्त होती है, तो उनकी उपादेयता भी समाप्त हो जाएगी।

यह सत्य है कि आज के युग में संचार के साधनों में वृद्धि हुई है और यह भी आवश्यक है कि हमें इन संचार साधनों का उपयोग भी करना चाहिए, किन्तु इन संचार के साधनों के माध्यम से जीवन-मूल्यों और आदर्शों का प्रसारण होना चाहिए, न कि वैयक्तिक अहम् का पोषण। आज यह स्पष्ट है कि हमारी रुचि उन आदर्शों और मूल्यों की स्थापना में उतनी नहीं होती है, जितनी अपने अहम् के सम्पोषण के लिए अपना नाम व फोटो छपा हुआ देखने में होती है। इस युग में, मैं देख रहा हूँ कि साधनाप्रिय साधु और श्रावक तो कहीं ओझल हो गये हैं। यदि उनका जीवन और चारित्रिक मूल्य आगे आएँ तो, उनसे हमारे

जीवन मूल्यों का संरक्षण होगा, अन्यथा केवल प्रदर्शन और अपने अहम् की पुष्टि में हमारी अस्मिता ही समाप्त हो जाएगी। आज न केवल नेताओं के बड़े-बड़े होर्डिंग्स लग रहे हैं, किन्तु हमारे साधुओं के भी होर्डिंग्स लग रहे हैं। संचार साधनों की सुविधाओं के इस युग में महत्त्व मूल्य और आदर्शों को दिया जाना चाहिए, न कि व्यक्तियों को, क्योंकि उसके निमित्त से आज साधु समाज में प्रतिस्पर्धा की भावना जन्मी है और उसके परिणाम स्वरूप संघ और समाज के धन का कितना अपव्यय हो रहा है, यह किसी से छिपा नहीं है। यह धन भी साधुवर्ग के पास नहीं है, गृहस्थ वर्ग के पास से ही आता है। आज पूजा, प्रतिष्ठा, दीक्षा, चातुर्मास, आराधना और उपासना की जो पत्रिकाएँ छप रही हैं, उनकी स्थिति यह है कि एक-एक पत्रिका की सम्पूर्ण लागत लाखों में होती है क्या यह धन सत्साहित्य या प्राचीन ग्रन्थों के, जो भण्डारों में दीमकों के भक्ष्य बन रहे हैं, प्रकाशन में उपयोगी नहीं बन सकता है?

मैं यह सब जो कह रहा हूँ उसका कारण साधकवर्ग के प्रति मेरे समादारभाव में कमी है ऐसा नहीं है, किन्तु उस यथार्थता को देखकर मन में जो पीड़ा और व्यथा है, यह उसी का प्रतिफल है। बाल्यकाल से लेकर जीवन की इस ढलती उम्र तक मैंने जो कुछ अनुभव किया है, मैं उसी की बात कह रहा हूँ। मेरे कहने का यह भी तात्पर्य नहीं है कि समाज पूरी तरह मूल्यविहीन हो गया है। आज भी कुछ मुनि एवं श्रावक हैं, जिनकी चारित्रिक निष्ठा और साधना को देखकर उनके प्रति श्रद्धा और आदर का भाव प्रकट होता है, किन्तु सामान्य स्थिति यही है। आज हमारे जीवन में और विशेषरूप से हमारे पूज्य मुनि वर्ग के जीवन में जो दोहरापन यथार्थ या विवशता बनता जा रहा है, उस सबके लिए हम ही अधिक उत्तरदायी हैं।

आज हमें अपने आदर्श अतीत को देखना होगा, अपने पूर्वजों की चारित्रनिष्ठा और मूल्यनिष्ठा को समझना होगा। मात्र समझना ही नहीं, उसे जीना होगा, तभी हम अपनी अस्मिता की और अपने प्राचीन गौरव की रक्षा कर सकेंगे। आज पुनिया का आदर्श, आनन्द की चारित्र निष्ठा, भामाशाह का त्याग, तेजपाल और वस्तुपाल की धर्मप्रभावना, सभी मात्र इतिहास की वस्तु बन गये हैं। तारण स्वामी, लोकाशाह, बनारसीदास आदि के धर्मक्रान्ति के शंखनाद की ध्वनि हमें सुनाई नहीं देती है। यह हमारी दुर्दशा का कारण है, हम कब सजग और सावधान होंगे? यह चिन्तनीय है।

35, ओसवाल सेरी,
शाजापुर 462001 (म.प्र.)

कर्मसिद्धान्त-व्यवस्था से वेदवैषम्य की सिद्धि

प्रो. रतनचन्द्र जैन

वेदवैषम्य जैनदर्शन का विचित्र प्रतीत होने वाला, किन्तु वास्तविक, विशिष्ट सिद्धान्त है। यह दिग्म्बर और श्वेताम्बर दोनों परम्पराओं के आगमों में स्वीकृत है। स्त्रीशरीर के सूचक योनि-स्तन आदि चिह्नों, पुरुष शरीर के सूचक शिश्न आदि चिह्नों और नपुंसक शरीर के सूचक योनि-शिश्न आदि के अभाव को द्रव्यवेद या द्रव्यलिंग कहते हैं। तथा पुरुष के प्रति कामभाव, स्त्री के प्रति कामभाव और दोनों के प्रति कामभाव का नाम भाववेद या भावलिंग है। देवों, नारकियों, भोगभूमिजों तथा कर्मभूमि के मनुष्यों और संज्ञी तिर्यचों में द्रव्यवेद और भाववेद समान ही होते हैं। अर्थात् जो द्रव्य या शरीर से स्त्री, पुरुष या नपुंसक है, वह भाव से भी स्त्री, पुरुष या नपुंसक ही होता है, किन्तु कर्मभूमि के संज्ञी तिर्यचों और मनुष्यों में व्यवस्था कुछ भिन्न है। उनमें भी प्रायः दोनों वेद समान ही होते हैं, मात्र कुछ जीवों में विषम हो जाते हैं। जैसे किसी मनुष्य में स्त्रीवेद नामक नोकषायवेदनीय कर्म के उदय से भाववेद तो स्त्री का उदित होता है, किन्तु शिश्नादि-उपांगनामकर्म के उदय से उसके शरीर की रचना पुरुषाकार हो जाती है। इसके फलस्वरूप शरीर से पुरुष होते हुए भी उसकी प्रवृत्तियाँ पुरुषसदृश न होकर स्त्रीसदृश होती हैं, उसमें पुरुष के ही साथ रमण करने की इच्छा उत्पन्न होती है। इसी प्रकार किसी मनुष्य में पुंवेदनामक नोकषायवेदनीय कर्म के उदय से भाववेद तो पुरुष का प्रकट होता है, किन्तु योनिस्तनादि-उपांगनामकर्म के उदय से उसके शरीर की आकृति स्त्रीरूप हो जाती है। इस तरह तीनों भाववेदों और तीनों द्रव्यवेदों में परस्पर विषमता होने से वेदवैषम्य के नौ विकल्प होते हैं। भाववेद कषाय होते हुए भी कषाय के समान अन्तर्मुहूर्त में परिवर्तित नहीं होता, अपितु जन्म से लेकर मृत्यु तक स्थायी रहता है।

भाववेद मोक्ष में बाधक नहीं है। यदि कोई मनुष्य भाव की अपेक्षा स्त्रीवेदी या नपुंसकवेदी है, तो मोक्षप्राप्ति में कोई बाधा नहीं होती। किन्तु यदि द्रव्य (शरीर) की अपेक्षा स्त्रीवेदी या नपुंसकवेदी है, तो मोक्षसाधना असंभव हो जाती है। अतः द्रव्यवेद भाववेद से बलवान् है। फलस्वरूप मनुष्यादि गतियों का प्रशस्त, अप्रशस्त और अप्रशस्ततर स्वरूप उसी के द्वारा निर्धारित होता है।

'षट्खण्डागम' में मनुष्यगति के भावस्त्रीवेदी द्रव्यपुरुष को भी 'मनुष्यिनी' शब्द से अभिहित किया गया है और इस प्रकार की मनुष्यिनी के लिए चौदह गुणस्थानों की प्राप्ति संभव

बतलायी गई है। इसलिए षट्खण्डागम में मनुष्यिनी के लिए संयतगुणस्थान के विधान से द्रव्यस्त्री की मुक्ति का विधान सिद्ध नहीं होता।

भाववेद के अनुसार द्रव्यवेद की रचना का मत आगमविरुद्ध

किन्तु प्रो. हीरालाल जी जैन वेदवैषम्य को स्वीकार नहीं करते, इसलिए उन्होंने षट्खण्डागम में जिस मनुष्यिनी के लिए संयत गुणस्थान की प्राप्ति बतलायी है, उसे भावमनुष्यिनी न मानकर द्रव्यमनुष्यिनी माना है और यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि दिग्म्बर जैन परम्परा में भी स्त्रीमुक्ति मानी गयी है (सिद्धांतसमीक्षा, भाग 3, पृष्ठ 191, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, सन् 1945)। उन्होंने यह भी प्रतिपादित करने का प्रयत्न किया है कि कर्मसिद्धान्त व्यवस्था से वेदवैषम्य सिद्ध नहीं होता (वही, पृष्ठ 191)। वे गोम्मटसार जीवकाण्ड की 271 वीं गाथा की श्री केशव वर्णी कृत जीवतत्त्व प्रदीपिका टीका का प्रमाण देते हुए लिखते हैं-

“मैंने (पं. राजेन्द्रकुमार जी को) उसी गाथा की संस्कृत टीका पढ़कर सुनाई, जहाँ विधिवत् यह बतलाया गया है कि जब पुंवेद के उदय के साथ निर्माण और अंगोपांगनामकर्म का उदय होता है, तभी शिश्नादि-लिंगाकित पुरुषशरीर उत्पन्न होता है। जब स्त्रीवेद के उदय के साथ उन्हीं नामकर्मों का उदय होता है, तब योनि आदि लिंगसहित स्त्रीशरीर उत्पन्न होता है और जब नपुंसकवेदोदय के साथ उन्हीं कर्मों का उदय होता है, तब उभयलिंग-व्यतिरिक्त नपुंसक शरीर उत्पन्न होता है। यही कर्मसिद्धान्त की नियत-व्यवस्था बतलाकर टीकाकार ने क्वचित् विषमत्व की बात यह कहकर समझाई है कि चूँकि परमागम में तीनों वेदों से क्षपक श्रेणी का विधान किया गया है, इसलिए यह भी संभव मान लेना चाहिए कि कर्मभूमि के जीवों में भाव और द्रव्य वेदों में वैषम्य भी होता है। किन्तु टीकाकार ने वेदसाम्य को जैसी व्यवस्था से समझाकर बतलाया है, वैसी वे यहाँ नहीं बता सके कि कर्मोदय की कौन सी व्यवस्था से यह वेदवैषम्य फलित होता है। वेदवैषम्य इस कारण भी स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि यदि किसी भी द्रव्य शरीर के साथ कोई भी भाववेद उदय में आ सकता, तो जीवन में कषायों के समान वेदपरिवर्तन भी माना गया होता।.....आगम में वेद परिवर्तन नहीं मानने का कारण यही है कि स्त्रीवेद स्त्रीशरीर में ही उदय में आ सकता है और चूँकि

शरीर रचना जीवनभर बदलती नहीं है, इसीलिए भाववेद भी एक पर्याय में कभी बदल नहीं सकता। यही बात पुरुष व नपुंसक वेदोदय की है" (सिद्धान्त समीक्षा, भाग 3, पृष्ठ 188-189)

प्रोफेसर सा. आगे लिखते हैं "शरीर की स्त्रीपुरुषरूप रचना के लिए क्रमशः स्त्री व पुरुषवेद-विशिष्ट जीव निमित्तरूप से कारणीभूत होता ही है। अत एव कोई भी द्रव्यवेद अपने भाववेद के बिना उत्पन्न नहीं हो सकता एवं भव के प्रथम समय से जीव के जो भाववेद होगा, वह अपने ही अनुरूप द्रव्यवेद की रचना करके व्यक्तरूप से उदय में आवेगा" (वही, भाग 3, पृष्ठ 190-191)।

प्रोफेसर सा. अपना कथन निम्न शब्दों में जारी रखते हैं, "वेदरूप भाव के अनुसार ही पुरुष-स्त्रीरूप जातियाँ उत्पन्न होती हैं और उनकी जो द्रव्यरचना प्रतिनियत है, वही उनके उत्पन्न होती है। अत एव वेदवैषम्य कर्मसिद्धान्त व्यवस्था से सिद्ध नहीं होता, चाहे उसके उल्लेख दिग्म्बर ग्रन्थों में हों और चाहे श्वेताम्बर ग्रन्थों में। फलतः यदि तीनों भाववेदों से क्षपकश्रेणी-आरोहण इष्ट है, तो तीनों द्रव्यवेदों से मुक्ति के प्रसंग से बचा नहीं जा सकता" (वही, भाग 3, पृष्ठ 191)

यद्यपि श्री केशव वर्णी ने गोम्मतसार जीवकाण्ड की 271 वीं गाथा की टीका में उपर्युक्त बात लिखी है, तथापि वह आगमसम्मत नहीं है, क्योंकि उक्त गाथा में जो कहा गया है, वह इस प्रकार है-

पुरुसिच्छिसंढवेदोदयेण पुरिसिस्थिसंढवो भावो ।

गामोदयेण दब्बे पाएण समा कर्हि विसमा ॥

अर्थ - पुरुषवेद, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद नामक चारित्र मोहनीय कर्म की प्रकृतियों के उदय से पुरुषभाववेद, स्त्रीभाववेद और नपुंसकभाववेद का उदय होता है तथा नामकर्म के उदय से पुरुषद्रव्यवेद, स्त्रीद्रव्यवेद और नपुंसकद्रव्यवेद की रचना होती है।

इस गाथा में स्पष्ट कहा गया है कि केवल अंगोपांग नामकर्म के उदय से शिश्न, योनि, स्तन अथवा इनके अभावरूप द्रव्यवेद की रचना होती है। उसमें भाववेद के उदय का कोई योगदान नहीं रहता। सर्वार्थसिद्धि में भी कहा गया है-

"द्रव्यलिङ्गं योनिमेहनादि नामकर्मोदयनिर्वर्तितम् ।

नोकषायोदयापादितवृत्ति भावलिंगम्" (2/52) ।

अर्थात् योनि-मेहन आदि द्रव्यलिंग की रचना नाम कर्मोदय के निमित्त से होती है और भावलिंग का उदय पुंवेदादि नोकषायकर्म के उदय से होता है।

धवला में प्रश्न उठाया गया है कि क्या स्त्रीवेद-द्रव्य कर्म के उदय से उत्पन्न आत्मपरिणाम स्त्रीवेद कहलाता है

अथवा नामकर्मोदय से उत्पन्न स्तन-जघन-योनिविशिष्ट शरीर स्त्रीवेद कहलाता है -

"इत्थिवेददब्बकम्मजणिदपरिणामो किमित्थीवेदो वुच्चदि पामकम्मोदय जणिदथणजहणजोणिविसिद्धसरीरं वा?" (पु.7, पृष्ठ 79)

इन वक्तव्यों में भाववेद की सहकारिता के बिना, केवल अंगोपांग-नामकर्म के उदय को द्रव्यवेद की रचना का हेतु बतलाया गया है। अतः श्री केशव वर्णी ने जो गोम्मतसार जीवकाण्ड की 271 वीं गाथा की टीका में कहा है कि भाववेद और अंगोपांगनाम कर्म दोनों के उदय से द्रव्यवेद की रचना होती है, वह आगमानुकूल नहीं है। अतः उस पर आधारित प्रो. हीरालाल जी की मान्यता भी आगमविरुद्ध ठहरती है। श्री केशव वर्णी ने अन्यत्र भी आगमविरुद्ध कथन किये हैं, जैसे उन्होंने द्रव्यमानुषी को भी क्षायिकसम्यक्त्व की प्राप्ति बतलायी है। उसे केवल द्वितीयोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति के अयोग्य बतलाया है (जी.त.प्र./गो.जी., गा. 714)।

वस्तुतः जीव के जिन परिणामों से पुंवेदादि नोकषाय-वेदनीय कर्मों का बन्ध होता है, उन्हीं से शिश्न-स्तन-योनि आदि उपांगों की रचना के निमित्तभूत शिश्नादि-उपांगनामकर्म, योनिस्तनादि-उपांगनामकर्म तथा शिश्नयोन्यादि-अभाव रूप-उपांगनामकर्म का बन्ध होता है। इस प्रकार इन नामकर्मों में ही शिश्न-योन्यादि द्रव्यवेदों की रचना के बीज अन्तर्निहित होते हैं। अतः उनकी रचना में अंगोपांगनामकर्म स्वयं समर्थ है। उसके लिए भाववेद के उदय की सहकारिता आवश्यक नहीं है। इसलिए "भाववेद के समान ही द्रव्यवेद की रचना होती है अतः कर्मसिद्धान्त व्यवस्था में वेदवैषम्य सिद्ध नहीं होता", प्रो. हीरालाल जी की यह मान्यता आगमविरुद्ध ठहरती है।

गतियों के प्रशस्तादिस्वरूप के निमित्त से

प्रशस्तादि भाववेद का उदय

भाववेद के अनुरूप द्रव्यवेद की रचना की मान्यता इसलिए भी आगमसम्मत सिद्ध नहीं होती कि स्वयं भाववेद का उदय मनुष्यादि गतियों के प्रशस्त, अप्रशस्त और अप्रशस्ततर भेदों के उदय पर आश्रित होता है और ये भेद द्रव्यवेद के प्रशस्त, अप्रशस्त और अप्रशस्ततर रूपों पर आश्रित होते हैं। विग्रहगति में तीन भाववेदों में से विशिष्ट भाववेद का उदय अकारण नहीं हो सकता। 'कार्यभेदात् कारणभेदः' यह नियम सूचित करता है कि विशिष्ट भाववेद विशिष्ट कारण पाकर ही उदय में आता है।

यह ध्यान देने योग्य है कि पूर्वकृत पुण्य-पाप के फलस्वरूप मनुष्य और देव गति के प्रशस्त और अप्रशस्त भेद होते हैं, जिनके कारण उनमें जन्म लेने वाले जीव सुमानुष-

कुमानुष और सुदेव-कुदेव कहलाते हैं (प्रवचनसार/त.प्र./ गा.3/56-57)। पूर्वकृत पुण्य-पाप के प्रभाव से उपलब्ध होने के ही कारण भावपुंवेद को प्रशस्तवेद एवं भावस्त्रीवेद तथा भावनपुंसकवेद को अप्रशस्तवेद कहा गया है, यथा- 1. "अपसत्थवेदोदयेण" (धवला, पु.5/1, 8, 75-76)। 2. "द्रव्यपुरुष-भावस्त्रीरूपे प्रमत्तविरते आहारक-तदङ्गोपाङ्गनामोदयो नियमेन नास्ति। 'तु'-शब्दात् अशुभ-वेदोदये मनःपर्यय-परिहारविशुद्धी अपि न" (गो.जी./ जी.त.प्र., गा.715)। भगवती-आराधना गा. 1210 में संयम का साधन होने से आगामी भव में द्रव्यपुरुषवेद की आकांक्षा करने को प्रशस्त निदान कहा गया है-

संजमहेदुं पुरिसत्तसत्तबलविरियसंघडणबुद्धी।
सावअबन्धुकुलादीणि णिदाणं होदि हु पसत्थं ॥

अतः द्रव्यपुरुषवेद भी प्रशस्त होता है और द्रव्यस्त्रीवेद एवं द्रव्यनपुंसकवेद अप्रशस्त। किन्तु मोक्ष का साधन द्रव्यपुरुषवेद ही होता है और उसके कारण मनुष्यगति की द्रव्यस्त्रियों और द्रव्यनपुंसकों से द्रव्यपुरुष का तथा देवियों से देवों का पद भी उच्च होता है। यही बात पंचेन्द्रिय तिर्यचों पर भी चरितार्थ होती है। इसलिए भावपुरुषवेद की अपेक्षा द्रव्यपुरुषवेद बलवान् है। फलस्वरूप उसके ही सद्भाव-अभाव के कारण मनुष्य, देव और तिर्यच गतियों में विशिष्ट (वेदजन्य) प्रशस्त-अप्रशस्त-भेद उत्पन्न होता है। कर्मभूमि के मनुष्यों और पंचेन्द्रिय तिर्यचों में तीन वेद होने से इन गतियों के तीन भेद होते हैं: द्रव्य पुरुषवेद की अपेक्षा प्रशस्त, द्रव्यस्त्रीवेद की अपेक्षा अप्रशस्त और द्रव्यनपुंसकवेद की अपेक्षा अप्रशस्ततर।

यतः द्रव्यवेद और भाववेद प्रायः समान होते हैं, इसलिए जिस जीव के द्रव्यपुरुषवेद-विशिष्ट प्रशस्त मनुष्यगति का उदय होता है, उसके भव के प्रथम समय में भावपुरुषवेद उदय में आता है। जिसके द्रव्यस्त्रीवेद-विशिष्ट अप्रशस्त मनुष्यगति का उदय होता है, उसके भावस्त्रीवेद तथा द्रव्यनपुंसकवेद-विशिष्ट अप्रशस्ततर मनुष्यगति के उदयवाले जीव के भावनपुंसकवेद प्रकट होता है। इसे दूसरे शब्दों में इस तरह भी कहा जा सकता है कि उदयागत प्रशस्त, अप्रशस्त या अप्रशस्ततर मनुष्यगति के अनुरूप उदय में आने योग्य जो द्रव्यवेदनामकर्म होता है, उसके अनुरूप भाववेद का उदय होता है। इस प्रकार भाववेदोदय के कारण का अन्वेषण करने पर युक्ति से यह सिद्ध होता है कि भाववेद के अनुरूप द्रव्यवेद का नहीं, अपितु द्रव्यवेद के सदृश भाववेद का उदय होता है।

कर्मसिद्धान्त के प्रकाण्ड पण्डित पं. रतनचन्द्र जी मुख्तार ने भी लिखा है, "जिस द्रव्यवेद का उदय होगा, वैसा ही भाववेद होगा। अन्य दो द्रव्यवेदों का एक समय पूर्व स्तिबुक-

संक्रमण द्वारा उदयवेदरूप संक्रमण हो जाता है और दो वेदरूप द्रव्यकर्म अपने रूप फल न देकर उदयरूप फल देकर खिर जाते हैं" (पं. रतनचन्द्र जैन मुख्तार : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, भाग 1, पृष्ठ 445)।

जो द्रव्यवेदनामकर्म सत्त्वरूप में स्थित है, उसके अनुरूप भाववेद का उदय होने में कोई बाधा नहीं है, क्योंकि सत्ता में स्थित कर्म भी जीव के परिणामों को प्रभावित करते हैं। जैसे "जिस जीव के नरकायु का सत्त्व है, वह अणुव्रत या महाव्रत धारण नहीं कर सकता" (पं. रतनचन्द्र जैन मुख्तार : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, 1/451)।

विषमभाववेद-नामकर्म के उदय से विषमभाववेद का उदय

इस प्रकार प्रायः द्रव्यवेद के ही सदृश भाववेद का उदय होता है, तथापि किसी-किसी मनुष्य या तिर्यच में द्रव्यवेद के विसदृश भी भाववेद उदय में आ जाता है। इसका कारण है विषमभाववेद-नामकर्म का उदय। अकलंकदेव ने तत्त्वार्थ-राजवार्तिक में कहा है, "भाववेद और द्रव्यवेद भिन्न-भिन्न कर्मों के उदय से अस्तित्व में आते हैं। अतः किसी आभ्यन्तर कारण की विशेषता से द्रव्यपुरुष में भी भावस्त्रीवेद का उदय हो जाता है और कभी द्रव्यस्त्री में भी भावपुरुषवेद उदय में आ जाता है "कदाचिद्योषितोऽपि पुंवेदोदयोऽप्याभ्यन्तरविशेषात्" (त.वा.8/9)

पं. आशाधर जी ने अनगारधर्माभूत के 'यः सोढुं कपटी-त्यकीर्तिभुजगीमीष्टे' इत्यादि श्लोक (6/18) में पूर्वभव में किये मायाचार को वेदवैषम्य का हेतु बतलाया है। आगम में मायाचार भावस्त्रीवेद और द्रव्यस्त्रीवेद के बन्ध का भी कारण बतलाया गया है। किन्तु द्रव्यस्त्रीवेद मोक्ष में बाधक है, जबकि भावस्त्रीवेद बाधक नहीं है। इससे सिद्ध होता है कि अतिमायाचार से द्रव्यस्त्रीवेद का बन्ध होता है और अल्प मायाचार से भावस्त्रीवेद का। तथा इससे यह भी सिद्ध होता है कि जिस जीव ने द्रव्यपुरुषवेद का बन्ध कर लिया है, वह यदि अल्प मायाचार करता है, तो उसके विषमभाववेद नामकर्म का बन्ध होता है, जिसके उदय से विग्रहगति में उसके द्रव्यपुरुषवेद के विपरीत भावस्त्रीवेद या भाव नपुंसकवेद का उदय होता है। अल्पमायाचार के तारतम्य से ही विषमभाववेदनामकर्म में वह विशेषता उत्पन्न होती है कि कहीं भावस्त्रीवेद और कहीं भावनपुंसकवेद उदय में आता है।

न्यायसिद्धान्तशास्त्री पं. पन्नालालजीसोनी ने 'षट्खण्डागम-रहस्योद्घाटन' नामक ग्रन्थ में 'विरुद्ध द्रव्यवेदनाम कर्म' को वेदवैषम्य का हेतु बतलाया है (पृष्ठ 172-173)। इसका कारण यह है कि वे विग्रहगति में उदित भाववेद के

निमित्त से तत्सदृश द्रव्यवेद की उत्पत्ति मानते हैं, इसलिए उन्होंने भाववेद से विसदृश द्रव्यवेद की उत्पत्ति से वेदवैषम्य होना माना है, और उसमें 'विरुद्धद्रव्यवेद नामकर्म' के उदय को हेतु बतलाया है। किन्तु जैसा कि पूर्व में सिद्ध किया गया है, भाववेद के निमित्त से तत्सदृश द्रव्यवेद की रचना नहीं होती, अपितु भावी द्रव्यवेद के निमित्त से तत्सदृश भाववेद का उदय होता है, अतः विषमभाववेद के उदय से ही वेदवैषम्य घटित होता है। अतः एव वेदवैषम्य का कारण विषमभाववेद-नामकर्म का उदय है, यह सिद्ध होता है।

यद्यपि इस नाम के नामकर्म का उल्लेख आगम में नहीं मिलता, तथापि 'कार्यभेदात् कारणभेदः' इस नियम के अनुसार उसका अस्तित्व सिद्ध होता है और वह अंगोपांग-नामकर्म में अन्तर्भूत है, जैसा कि 'पृथिवीकाय नामकर्म' एकेन्द्रिय-जाति नामकर्म में अन्तर्भूत है (धवला पु.3, पृष्ठ 330)। धवलाकार का कथन है कि लोक में घोड़ा, हाथी, वृक, भ्रमर, शलभ, मत्कुण, दीमक, गोमी और इन्द्रगोप आदि रूप से जितने कर्मों के फल पाये जाते हैं, कर्म भी उतने होते हैं (धवला, पु.3, पृष्ठ 330)। पं. रतनचन्द्र जैन मुख्तार ने भी एक प्रश्न के समाधान में लिखा है, "नामकर्म की 93 उत्तर प्रकृतियाँ हैं। उनमें से अंगोपांगनामकर्म, निर्माणकर्म, वर्णनामकर्म, संस्थाननामकर्म भी उत्तरप्रकृतियाँ हैं। इनके भी अवान्तरभेद असंख्यात हैं। इन कर्मों के उदय के कारण मनुष्यादि जीवों की भिन्न-भिन्न शक्तें पायी जाती हैं। कषायस्थान व योगस्थान भी असंख्यात हैं। इनकी विभिन्नता के कारण अंगोपांग आदि प्रकृतियों के बन्ध में विभिन्नता आ जाती है।" (पं. रतनचन्द्र जैन मुख्तार : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, भाग 1, पृष्ठ 481)। इन वचनों से भी 'विषमभाववेद-नामकर्म' का अस्तित्व सिद्ध होता है।

भाववेदानुसार द्रव्यवेदरचना का मत विसंगतिपूर्ण

भाववेद के अनुसार द्रव्यवेद की रचना मानने पर निम्न-लिखित विसंगतियाँ उत्पन्न होती हैं-

1. विग्रहगति में विशिष्ट भाववेद का उदय किस निमित्त से होता है, इस प्रश्न का समाधान केवल यह है कि उदयागत मनुष्यगति के प्रशस्तत्वादि वैशिष्ट्य से उसके निमित्तभूत द्रव्यपुरुषादिवेद का उदय सुनिश्चित हो जाने के कारण विग्रहगति में भावपुंवेदादि का उदय होता है। यदि इस तथ्य को स्वीकार न किया जाय और यह माना जाय कि भावपुंवेदादि के उदय में ही अंगोपांग नामकर्म द्रव्यपुरुषादिवेद की रचना करता है, तो भावपुंवेदादि का उदय किस निमित्त से होता है, इस प्रश्न का समाधान नहीं होता। फलस्वरूप जैन कर्मसिद्धान्त के यादृच्छिक (कारणकार्यव्यवस्था-रहित) अथवा नियतिवादी होने का प्रसंग आता है।

2. चिकित्सा विज्ञान ने सिद्ध किया है कि कुछ स्त्रीपुरुषों में स्त्री और पुरुष दोनों की जननेन्द्रियों के लक्षण होते हैं, जिससे उनके वास्तविक लिंग की पहचान करना मुश्किल होता है। अथवा इनमें से किसी में पहले स्त्रीजननेन्द्रिय की प्रधानता होती है, बाद में उसी के स्थान पर पुरुषजननेन्द्रिय का विकास होने लगता है। अथवा किसी पुरुष में स्त्रीजननेन्द्रिय विकसित होने लगती है। इस स्थिति को हम द्रव्यवेद-वैषम्य नाम दे सकते हैं। ऐसे स्त्री-पुरुषों को आधुनिक चिकित्सक शल्यक्रिया द्वारा पुरुष से स्त्री या स्त्री से पुरुष में परिवर्तित कर देते हैं। अब यदि भाववेद के अनुसार द्रव्यवेद की उत्पत्ति मानी जाय, तो एक ही भव में भाववेद के परिवर्तन का प्रसंग आयेगा। जिस मनुष्य में पहले स्त्रीजननेन्द्रिय की प्रधानता थी, उसमें पहले स्त्रीभाववेद का अस्तित्व मानना होगा, पश्चात् पुरुषजननेन्द्रिय का विकास हो जाने पर और शल्यक्रिया द्वारा पुरुष बन जाने पर स्त्रीभाववेद के स्थान में पुरुषभाववेद की उत्पत्ति माननी होगी। किन्तु आगम का वचन यह है कि जो भाववेद भव के प्रथम समय में उदित होता है, वही अन्तिम समय तक विद्यमान रहता है। अतः भाववेद के अनुसार द्रव्यवेद की उत्पत्ति की मान्यता आगमविरुद्ध है।

भावी द्रव्यवेद के अनुसार भाववेद का उदय मानने पर उक्त स्थिति में भाववेद के परिवर्तन का आगमविरोधी प्रसंग उपस्थित नहीं होता, क्योंकि किसी मनुष्य में एक ही भव में द्रव्यवेद का परिवर्तन हो जाने पर, भाववेद के अपरिवर्तित रहने से या तो वेदवैषम्य उत्पन्न हो सकता है अथवा पहले वेदवैषम्य था, तो वेदसाम्य की स्थिति घटित हो सकती है। ये दोनों स्थितियाँ कर्मसिद्धान्त के अनुकूल हैं। एक ही भव में द्रव्यवेद-परिवर्तन की घटना तीव्र पुण्य या पाप के उदय से संभव है, जैसे किसी दृष्टिहीन को तीव्र पुण्योदयवश नेत्र प्रत्यारोपण द्वारा दृष्टि की प्राप्ति संभव है अथवा तीव्रपापोदय के कारण कुष्ठरोग होने से सुन्दर शरीर का कुरूप हो जाना संभव है।

3. भाववेद के अनुसार द्रव्यवेद की उत्पत्ति मानने पर वेदवैषम्य घटित नहीं हो सकता, क्योंकि भाववेद सदा एकरूप होता है, उसमें वैचित्र्य या विविधरूपता नहीं होती। इसलिए उसके अनुसार सदा तत्सदृश द्रव्यवेद की ही रचना संभव है, विषम द्रव्यवेद का निर्माण संभव नहीं है। किन्तु भावी द्रव्यवेद के अनुसार भाववेद का उदय स्वीकार करने पर प्रायः वेदसाम्य तथा क्वचित् विषमभाववेद-नामकर्म के उदय से वेदवैषम्य, दोनों संभव होते हैं।

इन तीन विसंगतियों से गोम्मटसार के टीकाकार केशव वर्णी तथा उनके मतानुयायी वेदवैषम्यवादियों का और प्रथम

दो विसंगतियों से वेदवैषम्य-विरोधी प्रो.हीरालाल जी जैन का यह मत कर्मसिद्धान्त व्यवस्था के विरुद्ध सिद्ध होता है कि भाववेद के अनुसार ही अंगोपांगनामकर्म द्रव्यवेद की रचना करता है। अतः उदयागत मनुष्यगति के प्रशस्तत्वादि-वैशिष्ट्य से द्रव्यपुरुषादिवेद का उदय सुनिश्चित होता है, उसके अनुसार भावपुरुषादि वेद का उदय होता है और क्वचित् विषमभाववेद-नामकर्म के उदय से विषमभाववेद उदय में आता है। इस व्यवस्था के अनुसार कर्मसिद्धान्त से ही वेद वैषम्य का अस्तित्व सिद्ध होता है।

संदर्भ

1. Intersexuality may be defined as the presence of both male and female external and or internal genital organ in the same individual causing confusion in the diagnosis of true sex. (D.C.Dutta, Text Book of Gynaecology Including Contraception' Third addition, chapter 26- Intersex, Publisher: New Central Book Agency, 8/1, Chintamani Das lane Calcutta - 700009)

ए/2, मानसरोवर, शाहपुरा
भोपाल- 462039, (म.प्र.)

यह न करें चातुर्मास में

एलक नम्रसागर जी

दिग्भ्रमित युवा शक्ति को दिशाबोध दें, समाज में छाई जड़ता को दूर कर चेतना का प्रवाह करें, कई भागों में विभाजित एवं टूटती समाज को प्रेम और वात्सल्य के बन्धन में बांध कर समाज का जीर्णोद्धार करें, समाज में सन्त के चातुर्मास की यही सार्थकता है। समाज को धर्मध्यान कराना ही धर्म की सच्ची प्रभावना समझी जा सकती है। अनेक फंक्शनों में ढेर सारा पैसा खर्च कराना केवल पत्र पत्रिकाओं के आलोचना का विषय है। सन्त के चातुर्मास से समाज को क्या मिला? अध्यात्म, संस्कार, चर्या, बस हमको यही देना है समाज को। चातुर्मास में समाज को हम अध्यात्म दें, संस्कार दें, चर्या दें। यहाँ वहाँ के कार्यक्रमों में पैसे बरबाद न कर स्थाई पाठशाला फंड तैयार करें, एवं पाठशाला खोलने पर जोर दें, समाज में स्वाध्याय की टूटती परम्परा को जीवित करें सारी समाज को सामूहिक स्वाध्याय कराएं।

चातुर्मास में छपने वाले कम्प्यूटरिकृत, चिकने कागज, चमकते कागज, कई रंगों में रंगीन कागज, मंहगे दामों वाले चातुर्मासिक पम्पलेटों का छपवाना भी बंद करें। हर साल हम चातुर्मास के पम्पलेटों में इतना पैसा खर्च कर देते हैं उतने पैसे में एक कॉलेज बन सकता है, सैकड़ों पुस्तकालय खुल सकते हैं, कई गरीब परिवारों को आजीविका का साधन मिल सकता है। आखिर उन दो-दो हाथ लम्बे पम्पलेटों को पढ़ता कौन है? केवल माली और पोस्टमैन के अलावा? फोन, मोबाइल, इंटरनेट के जमाने में इन पम्पलेटों की कतई आवश्यकता नहीं है अतः छपवाना ही है तो हल्के कागज, कम कीमत वाले पम्पलेटों में काम चला लें।

हाँ चातुर्मास में आप इतना अवश्य काम करें कि जैन समाज के प्रत्येक घर में जैन पत्र-पत्रिकाओं के आजीवन सदस्य बनवा दें ताकि हर माह घर बैठे ज्ञान की अच्छी-अच्छी बातें मालूम होगी। जैसे जिनभाषित, संस्कार सागर, महिलादर्श, बालादर्श, जैनगजट आदि। पम्पलेट की अपेक्षा आप 20-25 हजार का साहित्य बुलवा दें ताकि चार माह समाज साहित्य का अध्ययन करते रहें। आपने खुद देखा होगा कि मंदिरों में पम्पलेट रद्दी कागज की कोठरी में डले रहते हैं उनका कुछ भी उपयोग नहीं होता। आशा है सन्त लोग समाज को पम्पलेटों के छपवाने में रुपये खर्च कराने का आग्रह न करें।

सन्त ने समाज में यदि मृत्यु भोज, रात्रि विवाह, बफर सिस्टम बन्द करवा कर पाठशाला, पुस्तकालय खुलवा दिया तो मैं समझता हूँ इससे बढ़कर चातुर्मास की और कोई सफलता नहीं हो सकती। चातुर्मास के दौरान युवा पीढ़ी को मर्यादा के क्षेत्र में भी मर्यादित करें। आप उन लड़कियों की एक ड्रेस बनवा दें ताकि हर क्लासों में सभी लोग ड्रेस पहन कर आएँ, आप उन लड़कियों को जीन्स के कपड़े पहन कर क्लासों में आने की इजाजत न दें। चातुर्मास के दौरान समाज को छहढाला एवं रत्नकरण्ड श्रावकाचार ग्रन्थ का अध्ययन अवश्य कराएं वह भी अध्यात्म के साथ चातुर्मास के दौरान इतना भी ध्यान रखें कि समाज को आगे का चातुर्मास कराने की प्यास बनी रहे। इस तरह की जीवन चर्या समाज में बनाएं। चातुर्मास समाज सुधार का अच्छा मौका है इसको व्यर्थ न जाने दें, वर्षा योग के चार माह के प्रत्येक दिन पर्यूर्षण पर्व सा गुजारें।

गिरनार एक ज्वलन्त समस्या :

बहुसंख्यकों को भी अपने हृदय उदार बनाने होंगे

कैलाश मड़बैया

कुछ वर्षों पहले उत्तरप्रदेश की बूढ़ी गंगा क्षेत्र के कंपिल तीर्थ पर एक पुरातत्त्व-गोष्ठी में भाग लेने गया था। अनेक हिन्दु पंडितों ने वहाँ स्थित मीनारों, मकबरों और मस्जिदों को इंगित कर बताया कि देखिये यह स्पष्टतः मंदिरों एवं मठों को परिवर्तित कर बनाये गये हैं। इसी तरह माण्डव की एक विशाल मस्जिद को भी शिव मंदिर में परिवर्तित कर स्थापित किया गया बताया जाता है, इत्यादि! अभी बाबरी मस्जिद का प्रकरण शांत नहीं हुआ कि चिकमंगलूर (दक्षिण) में एक मुस्लिम इबादत स्थल पर दत्तात्रय की समाधि का विवाद जारी हो गया। कुछ कथित विद्वान् तो आगरा स्थित ताजमहल को भी हिन्दूमहल को परिवर्तित कर, बताने में नहीं चूकते। आखिर इन विवादों का अंत कहाँ होगा?

पिछले दिनों गुजरात स्थित गिरनार तीर्थ की यात्रा पर जाने का अवसर मिला तो यह देखकर हैरान रह गया कि जिन वैदिकधर्मियों और जैनधर्मियों में कभी झगड़ा नहीं रहा, उन्हीं में कतिपय कथित महन्त अपनी दुकानदारी चलाने के लिए लट्टुमारी कराने पर उतारू हैं। मैं तो स्वयं ही पचास वर्षों पूर्व से लोकगीतों एवं भजनों में सुनता आ रहा था; इतिहास में, पुराणों में यत्र-तत्र-सर्वत्र सभी जगह पढ़ता आ रहा था कि गिरनार पर्वत की पांचवी टोंक से जैन धर्म के बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ मोक्ष गये थे। उनके श्रीचरण वहाँ विराजमान हैं इसलिए जैनियों के लिये गिरनार जी (गुजरात), सम्मेद शिखर के बाद दूसरा अत्यन्त पूज्य पर्वत है।

प्रसिद्ध पुरातत्त्वविद् डॉ. फूहरर, प्रो. वारनेट, कर्नल टॉड एवं डॉ. राधाकृष्णन, तीर्थंकर नेमिनाथ की ऐतिहासिकता को स्वीकारते हैं। टॉड ने तो खोजकर यह निष्कर्ष दिया था कि नेमिनाथ की स्केण्डिनेविया की जनता में प्रथम 'ओडिन' तथा चीनियों के प्रथम 'फो' नाम के देवता तीर्थंकर नेमिनाथ ही थे। 'भारतीय इतिहास एवं दृष्टि' (पृष्ठ 45) में डॉ. प्राणनाथ विद्यालंकार ने कठियावाड़ से प्राप्त एक प्राचीन ताम्रपत्र प्रकाशित किया था। उक्त दान पत्र पर उल्लेख है कि सुमेर जाति में उत्पन्न काबुल के रिक्त्वियन सम्राट ने बुचंदनज्जर ने जो रेवानगर (कठियावाड़) का अधिपति था; यदुराज की द्वारिका में आकर गिरनार के स्वामी नेमिनाथ की भक्ति की तथा दान दिया था।

दानपत्र पर पश्चिम एशियाई नरेश की मुद्रा भी अंकित है। यह काल ईसा पूर्व 1140 अनुमान किया गया। उन्हीं ऐतिहासिक गिरनार के स्वामी के चरणों पर पिछले वर्षों से यहाँ कुछ गेरूए वस्त्रधारी लोगों की 'दादागिरी' देखकर मन पीड़ा से भर गया कि वहाँ जैनियों को, वे भगवान् नेमिनाथ की जय तक बोलने नहीं देते। हाँ, चढ़ावा जरूर ग्रहण कर लेते हैं और शांत जिनावलम्बी यह अन्याय वर्षों से सह रहे हैं?

मैंने अत्यंत विनम्रता से उन कथित गेरूये वस्त्रधारियों (आचरण देखकर सन्त तो नहीं कह सकते) से ज्ञात करना चाहा कि आप जैनियों को भगवान् नेमिनाथ की जय क्यों नहीं बोलने देते? तो त्रिशूल उठाकर वे हम पर आग बबूला हो उठे- "यह दत्तात्रय का स्थान है, नेमिनाथ की जय नहीं बोल सकते।" मैंने पूछा - जैन तो दत्तात्रय की जय बोलने से नहीं रोकते फिर आप क्यों यह विष फैला रहे हैं ! यह सुनकर वे शेर की तरह दहाड़ उठे- दम है जैनियों में जो हमें रोके। हमने दत्तात्रय कह दिया तो नेमिनाथ कैसे हो जायेंगे? फिर नेमिनाथ की जय क्यों बोलेंगे?

इस समय हठधर्मिता का उनका क्रोध सातवें आसमान पर था, फिर भी मैंने सहजता से कुछ निम्न प्रश्न पूछे जिनका उत्तर उनके पास नहीं था परन्तु बहुसंख्यक-बल का घमण्ड उनके सिर पर चढ़कर बोल रहा था।

मेरा पहला प्रश्न था कि यहाँ दत्तात्रय कहाँ से आ गये, जबकि आप लोग माउण्ट आबू के अचलगढ़ पर दत्तात्रय मंदिर को मानते हैं। उधर आप दक्षिण में चिकमंगलूर के निकट की मुस्लिम दरगाह को दत्तात्रय का मान रहे हैं। चित्रकूट में भी दत्तात्रय हैं! तो असली दत्तात्रय का मूल स्थान कोई एक नियत तो करिए! (मंदिर भले ही कई हों!) वे चीखे- असली दत्तात्रय यहीं हैं!

मेरा पुनः आधारभूत प्रश्न था- हिन्दुओं के समस्त तीर्थ नदी के किनारे हैं यथा मथुरा, काशी, उज्जयनी, अयोध्या, वृन्दावन आदि और जैनियों के प्रायः पर्वतों पर- जैसे शिखर जी, गिरनारजी, दिलवाड़ा, गोमटेश्वर, सोनागिरि आदि; तो आपका इस पहाड़ पर तीर्थ कहाँ से आ गया? हाँ, कुछ देवियों के तीर्थ अवश्य पहाड़ों पर माने जाते हैं पर दत्तात्रय तो देवी हैं नहीं।

आगे मैंने शंका का निवारण करना चाहा कि 'चरण' तो जैन धर्मावलम्बियों के धर्म में ही मानने की परम्परा है, हिन्दुओं में प्रायः नहीं। दत्तात्रय के चरणों का पुराणों में कहीं उल्लेख भी नहीं मिलता।

मैंने उनसे ऐतिहासिक पक्ष की बात कही कि जैन शास्त्रों के अनुसार तीर्थंकर नेमिनाथ बारात लेकर जूनागढ़ की राजकुमारी राजुल को ब्याहने इसी अंचल से जूनागढ़ (पहाड़ के नीचे की बस्ती) आये थे। परन्तु बारात के स्वागतार्थ माँस के कटने वाले पशुओं की, बाड़े की उठी चीत्कार सुनकर नेमि कुँवर का मन द्रवित हो उठा और वे पशुओं को मुक्त कराने के उपरान्त स्वयं भी 'ऐसे' जीवन से मुक्ति पाने के लिए बिन ब्याहे, वस्त्राभूषण त्याग, निकट स्थित इसी गिरनार पर्वत पर तपस्यारत हो, मोक्षगामी हुये। राजुल के पिता का दुर्ग जूनागढ़ में आज भी है।

यह भी कि नेमिनाथ और श्री कृष्ण चचेरे भाई थे इसलिए श्री कृष्ण की द्वारिका, यहीं पास स्थित (समुद्र में समाई) मानी जाती है। भौगोलिक पक्ष यह भी है कि समुद्र के पास स्थित अरावली पर्वत के इन शिखरों पर बने अन्य जैन मंदिर हजारों वर्ष पुराने हैं जबकि वैदिक देवी-देवताओं के पाषाण चिह्न आजादी के बाद रखे गये हैं। वहाँ के शिलालेख, राजुल गुफा और 'सरे सावन' आदि स्थल भौगोलिक प्रमाण प्रस्तुत करने के लिये पर्याप्त हैं।

सामाजिक प्रमाण यह है कि सदियों से सुदूर भारतीय अंचलों में गाये जाने वाले लोकगीतों में गिरनार पर्वत पर नेमि-राजुल की तपस्या और मोक्ष जाने की परम्परा जीवित है।

“नेमि पिया ने जो लिया गिरनार बसेरा....” और ‘मोरे नेमि गये गिरनार-बरस जाओ दो बुंदियाँ....’ जैसे लोकगीतों के अतिरिक्त राजस्थानी और गुजराती में चर्चित किंवदंतियाँ एवं प्रचलित लोकगीत गिरनार के नेमिनाथ को अपने हृदयों में आदि काल से बसाये हुए हैं।

दिलवाड़ा की जीवंत संगमरमरी शिल्पकला में हजार वर्ष से गिरनार की 'नेमि-तपस्या' और 'राजुल विवाह' के प्रमाण आज भी दिलों को उद्देलित किये बिना नहीं रहते। भारत भर में ग्रन्थों में, जैन आख्यानों में, मंदिरों की भित्ति कलाओं में गिरनार से नेमिनाथ के मोक्ष जाने की वास्तविकता और पाँचवी टोंक (शिखर) स्थित चरण जैन धर्मावलम्बियों की हार्दिक आस्था के आदिकालीन संबल हैं।

जैन धर्मावलम्बी तो इतने उदार और शांत है कि सदियों से जैन मंदिरों में तीर्थों में अनेक जगह हनुमान, क्षेत्रपाल विराजमान हैं पर कभी किसी जैन ने उनको पृथक् करना तो दूर, प्रणाम

करना भी नहीं छोड़ा। म.प्र. के गुना स्थित जैन तीर्थ का नाम बजरंगगढ़ है तो उसका नाम भी बदलने की नहीं सोची। देवगढ़ में, खजुराहो में हिन्दु मंदिर साथ में पूज्य है। सोनागिरी पर तो कतिपय हिन्दुओं ने नई स्थापना कर अवरोध भी उत्पन्न किया पर जैन समाज ने कभी पराया नहीं माना।

उस दिन जब गिरनार पर्वत पर केवल चढ़ावा ग्रहण करने की गरज से कब्जा जमाये गेरूये वस्त्रधारियों ने, केवल हमें मारने की धमकी के अतिरिक्त हमारे एक भी प्रश्न का उत्तर नहीं दिया तो तलहटी में आकर वहाँ के निवासियों से हमने चर्चा की। तब ज्ञात हुआ कि कुछ वर्ष पहले (आजादी के तत्काल बाद) यहाँ के अन्य जैन अनुयायियों और हिन्दु धर्मावलम्बियों में यह समझौता हुआ था कि गिरनार पर्वत पर प्रत्येक दर्शनार्थी को शांति से न केवल दर्शन करने दिये जायेंगे वरन् जयकारा बोलने पर भी नहीं रोका जायेगा। हिन्दु धर्मावलम्बी भी चाहें तो दर्शन कर सकते हैं। तत्कालीन कलेक्टर के उस समझौता बैठक के दस्तावेज विद्यमान हैं। परन्तु अब स्थिति यह निर्मित हो चुकी है कि जैन धर्मावलम्बी यहाँ से भयभीत हो अन्यत्र भाग गये। मात्र एक दो परिवार शेष हैं परन्तु प्रतिदिन अनेकानेक जैन दर्शनार्थी देश के सुदूर स्थलों से नेमिनाथ की चरण वंदना हेतु गिरनार पर्वत की दस हजार सीढ़ियां चढ़कर ऊपर पहुँचते हैं और गालियां/धमकियाँ खाकर, मन मसोसकर लौट जाते हैं। वर्षों पहले एक भोपाल के जैन पर प्राणघातक हमला भी किया गया था।

जैन समाज को अल्पसंख्यक होते हुये भी, केन्द्र शासन गुजरात एवं अन्य कई प्रान्तीय सरकारों ने अभी तक अल्पसंख्यक घोषित नहीं किया (यद्यपि म.प्र. जैसे कई प्रान्तों में जैन अल्प संख्यक घोषित किये जा चुके हैं) जिससे कि वे अपने धर्म तीर्थों की कानूनी तौर पर सुरक्षा कर सकें। विडम्बना यह है कि जैन अनुयायी अल्प तो हैं ही, शांतिप्रिय, अहिंसक और लोकतंत्र के नारों, जुलूसों, झगड़ों-झाँसों से बचते रहना चाहते हैं। आपस में भी जैन लोग कई फिरकों में बँट हुये हैं- दिगम्बर, श्वेतांबर, तेरहपंथी, बीसपंथी, समैया, परवार, गोलापूरब, गोलालारे और अब निश्चयनय-व्यवहारनय आदि तक के खेमे खड़े हो गये हैं। अब बताइये जिस जैन समाज के काश्मीर से कन्याकुमारी और गुजरात से बंगाल तक हर गाँव-पर्वत पर कलात्मक जैन मंदिर और भव्य तीर्थ अवस्थित हों ऐसे में उनकी सुरक्षा कौन करेगा? आखिर 'जिसकी लाठी उसकी भैंस वाली' उक्ति कब तक चलेगी?

75, चित्रगुप्त नगर
कोटरा-भोपाल (म.प्र.)

धर्म में राजनीति

मूलचन्द लुहाड़िया

प्रशंसा के शब्दों में यह कहा जाता रहा है कि सोनगढ़ मान्यता के प्रणेता कानजी स्वामी ने बहुत बड़ी संख्या में श्वेताम्बर जैनों को दिगम्बर जैन बनाया है और सौराष्ट्र में अनेक दिगम्बर जैन मंदिरों का निर्माण कराया है और इस प्रकार उन्होंने दिगम्बर जैन की महती प्रभावना की है। किन्तु वास्तविकता कुछ और ही है। उन्होंने इस अनेकांतात्मक कल्याणकारी दिगम्बर जैन सिद्धान्त के स्वस्थ शरीर को अपनी एकान्त मान्यताओं के कोढ़ से विकृत कर दिया है। उनके अनुयायी अपनी एकान्त मान्यताओं के प्रचार से धर्म के क्षेत्र में राजनीति का सहारा लेने में भी संकोच नहीं कर रहे हैं।

सोनगढ़ मान्यता के पुरोधा विद्वान् डॉ. हुकुमचंद भारिल्ल का एक लेख "एक नये युग का आरम्भ" प्राकृत विद्या जुलाई-दिसम्बर, 2003 में प्रकाशित हुआ था। इस लेख में वर्तमान युग के दिगम्बरत्व के पुनरोन्नायक प.पू. आचार्य शांतिसागर जी महाराज की प्रशंसा की है। आश्चर्य हुआ यह देखकर कि दिगम्बर साधुओं के प्रति घोर उपेक्षा का व्यवहार करने वाले और महाव्रतादि को एकान्त से बंध का कारण घोषित करने वाले इन सोनगढ़ी विद्वान् श्री भारिल्ल जी में सहसा यह मुनि भक्ति कैसे उमड़ पड़ी? लेख को ध्यान से पढ़ने पर यह रहस्य उद्घाटित होता है कि श्री भारिल्ल जी ने आचार्य श्री की प्रशंसा के बहाने कानजी स्वामी और उनकी मान्यता की ही प्रशंसा की है। यह है धर्म में राजनीति के प्रवेश द्वारा लाभ उठा लेने की निपुणता का एक उदाहरण। यदि वास्तव में ही निष्कपट भाव से श्रद्धापूर्वक आदरणीय भारिल्ल जी अपने शब्दों के अनुसार प.पू. आचार्य शांतिसागर महाराज को इस युग के नग्न दिगम्बरत्व की प्रतिष्ठा के नये युग का प्रारम्भ करने वाले दिगम्बर परम्परा के सर्वश्रेष्ठ हैं तो उन्हें अपनी इस श्रद्धा को व्यवहारिक प्रयोग में लाकर समाज के समक्ष अपना स्पष्ट आचरण प्रकट करना चाहिए। उन्हें निजी एवं सार्वजनिक धार्मिक स्थानों पर पू. आचार्य श्री के प्रेरणादायी चित्र लगाने चाहिए। पूजा की पुस्तकों में पू. आचार्य श्री की पूजा छपानी चाहिए। प्रतिदिन अथवा समय-समय पर आचार्य श्री की पूजा करनी चाहिए। अपनी पत्रिकाओं में पू. आचार्य श्री के संस्मरण एवं उपदेश प्रकाशित करना चाहिए। यदि ऐसा नहीं हुआ तो यही समझा जायेगा कि विद्वान् भारिल्ल जी की कथनी और करनी में समानता नहीं है और उनके द्वारा अपने लेख में की गई पू. आचार्य श्री प्रशंसा मात्र छलपूर्ण वाक् जाल है।

लेख में पहले अध्यात्म को वर्तमान रूप में जीवित रखने वाले टोडरमल जी आदि विद्वानों की प्रशंसा की गई है। वस्तुतः उस पंडित वर्ग ने आगम ज्ञान को जीवित रखा है न कि अध्यात्म को। अध्यात्म में दो शब्द हैं। अधि और आत्म। अधि अर्थात् निकटता। आत्म निकटता, आत्मलीनता अथवा आत्म रमणता का नाम अध्यात्म है जो पर पदार्थ के अर्तबाह्य संयोग सम्बन्ध से मुक्त होने पर प्रकट वीतराग चरित्र का रूप है। मात्र शब्दों द्वारा आत्मा की बात करने वाले किन्तु अप्रत्याख्यानावरणादि कषाय की तीन चौकड़ियों सहित व्यक्ति को आध्यात्मिक सत्पुरुष कैसे कहा जा सकता है और वे महापुरुष कैसे हो सकते हैं? जैन दर्शन के अनुसार व्यक्ति में पूज्यता चरित्र से आती है, ज्ञान से नहीं। पूर्व में हुए जैनागम के ज्ञाता, टीकाकार और व्याख्याकार मूर्धन्य विद्वान् पं. आशाधर जी, पं. बनारसीलाल जी, पं. टोडरमल जी, पं. दौलतराम जी, पं. जयचंद जी आदि हुए, उनको कभी आध्यात्मिक सत्पुरुष या सद्गुरुदेव या महापुरुष नामों द्वारा महिमा मंडित नहीं किया गया। उन्होंने समाज में अपने को साधारण श्रावक के रूप में ही प्रस्तुत किया और अपने पद की सीमा से बाहर अविवेक पूर्ण विनय सत्कार को कभी पनपने नहीं दिया।

श्री भारिल्ल जी ने आचार्य श्री एवं कानजी स्वामी के सम्मिलन को एक ऐतिहासिक प्रसंग बताते हुए इस प्रकार प्ररूपित किया है मानो पू. आचार्य श्री एवं कानजी स्वामी समान पद के व्यक्ति हों। प.पू. आचार्य श्री आचार्य परमेष्ठी के रूप में थे और कानजी स्वामी जो स्वयं को अविरत सम्यग्दृष्टि कहते थे, उनके उपासक के रूप में। दोनों में उपास्य उपासक के सम्बन्ध की बात भारिल्ल जी की लेखनी नहीं लिख पाई। भारिल्ल जी द्वारा आचार्य श्री के द्वारा सोनगढ़ की प्रशंसा में कहे गए निम्न वाक्य चिंतनीय हैं "आचार्य श्री ने न केवल उन्हें आशीर्वाद दिया, अपितु सोनगढ़ के आध्यात्मिक वातावरण की सराहना भी की। श्वेताम्बर बहुल सौराष्ट्र में दिगम्बर धर्म का उदय और महती प्रभावना देखकर आचार्य श्री बहुत प्रसन्न थे, उन्होंने उक्त प्रभावना और उसमें स्वामी जी के नेतृत्व में सक्रिय लोगों की सच्चे दिल से सराहना की और कहा कि यहाँ का आध्यात्मिक वातावरण देखकर हमें बहुत खुशी हुई है।" राजनीति में प्रवीण भारिल्ल जी के उक्त वाक्य असत्य पर आधारित होने के साथ-साथ कूटनीति से भी प्रेरित हैं।

इस प्रसंग में सोनगढ़ समीक्षा में छपे पू. आचार्य शांति सागर

महाराज के निम्न वाक्य ध्यान देने योग्य हैं “यह जो नया मत चलाया गया है, यह कानजी मत ही कहलायेगा। समाज को इससे सावधान रहना चाहिए। जिससे दिगम्बर जैन धर्म में यह मिथ्या विकार पनपने न पावे।” उपरोक्त शब्दों में कानजी मत की आलोचना करने वाले पू. आचार्य श्री कैसे सोनगढ़ के वातावरण की और जैन धर्म में फैल रहे इस मिथ्या विकार की सराहना कर सकते थे? संयम को धर्म नहीं मानने वाले असंयम प्रिय व्यक्तियों की सराहना तो असंयम की सराहना होगी। जीवन में संयम के बिना अध्यात्म का प्रवेश असंभव है। संयम ही तो अध्यात्म का थर्मामीटर है। जीवन में संयम के प्रारम्भ से ही अध्यात्म का प्रारम्भ, संयम के विकास से ही अध्यात्म का विकास और संयम की पूर्णता से ही अध्यात्म की पूर्णता होती है। संयम धारण करने की अनुकूलता के होते हुए भी संयम के प्रति अरुचि के कारण संयम धारण नहीं करने वाले व्यक्तियों के द्वारा आध्यात्मिक वातावरण के निर्माण की कल्पना भी नहीं की जा सकती। जो कुछ वहाँ हो रहा है वह मात्र शब्दों द्वारा अध्यात्म के अभिनय से अधिक कुछ नहीं है। आदरणीय भारिल्ल जी ने पू. आचार्य श्री द्वारा की गई सराहना के बारे में सर्वथा असत्य और मनगढ़ंत बातें लिखी हैं और पाठकों को गुमराह करने की कूटनीतिक चाल चली है। पू. आचार्य श्री के सोनगढ़, दो दिन ठहरने की बात भी असत्य है। पं. सुमेरुचंद जी दिवाकर की “चारित्र चक्रवर्ती” पुस्तक के पृष्ठ 107 पर लिखा है :-

तीसरी लाइन “इस पर आचार्य श्री ने कहा- “हम तुम्हारा उपदेश सुनने नहीं आए हैं हमें तुम्हारे भाव जानना है।”

अठाहरवीं लाइन “महाराज के इस विवेचन को सुनकर कानजी चुप हो गए। इस प्रबल तर्क के विरुद्ध कहा भी क्या जा सकता था?”

इक्कीसवीं लाइन “महाराज सोनगढ़ में नहीं ठहरे थे।”

श्री भारिल्लजी और दिवाकरजी के कथनों में निम्न विरोधाभास है :-

1. श्री भारिल्ल जी ने लिखा है “आचार्य श्री के अनुरोध पर स्वामी जी का भी समयसार की 13 वीं गाथा पर आधा घंटा प्रवचन हुआ।” जबकि श्री दिवाकर जी के अनुसार आचार्य श्री ने कहा था कि हम तुम्हारा उपदेश सुनने नहीं आए हैं।

2. श्री भारिल्ल जी ने लिखा है कि पू. आचार्य श्री दो दिन सोनगढ़ में रुके जब कि श्री दिवाकर जी ने लिखा है कि महाराज सोनगढ़ में नहीं ठहरे थे।

3. श्री भारिल्ल जी ने लिखा है कि “आचार्य श्री ने न केवल उन्हें आशीर्वाद दिया बल्कि सोनगढ़ के आध्यात्मिक वातावरण की सराहना भी की” जबकि सोनगढ़ समीक्षा के अनुसार पू. आचार्य श्री ने कानजी मत को एक नया मत बताते हुए कहा कि

समाज को इससे सावधान रहना चाहिए जिससे दिगम्बर जैन धर्म में यह मिथ्या विकार पनपने न पावे।

आदरणीय श्री भारिल्ल जी ने लेख के अंत में परम पूज्य आचार्य श्री और आध्यात्मिक सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी दोनों को महापुरुष शब्द से सम्बोधित कर सम श्रेणी में लाने का प्रयास किया है। यदि श्री भारिल्ल जी में जैनागम की विनय व्यवहार व्यवस्था पर थोड़ी भी श्रद्धा होती तो अपने आपको अविरतसम्यग्दृष्टि घोषित करने वाले श्री कानजी को प.पू. आचार्य परमेष्ठी के उपासक के रूप में और आचार्य श्री को उपास्य के रूप में प्रस्तुत करते। दोनों को महापुरुष के रूप में प्रस्तुत कर उन्हें समान श्रेणी में गणना करने का दुर्भावनापूर्ण प्रयत्न नहीं करते। यदि कानजी स्वामी को उनके कथनानुसार दार्शनिक श्रावक भी मान लिया जाय तो आचार्य समन्तभद्र स्वामी के अनुसार उनको “पंचगुरुचरण शरणाः” होना चाहिए। उनके मन में आचार्य श्री की पूजा करने और उनको आहारदान देने के भाव आए बिना नहीं रह सकते थे। क्यों ऐसा हुआ?

जैन धर्म में अध्यात्म और संयम की भिन्न-भिन्न धाराएं नहीं हैं। अध्यात्म और संयम दोनों सहचारी एवं सहगामी परिणाम हैं जिनका सम्बन्ध कषायों के अभाव में जुड़ा है। सम्यग्दर्शन प्रकट होने पर अनंतानुबंधी कषाय का अभाव रहता है। बाह्य में श्रावकोचित प्रतिमा रूप से देशव्रत धारण किए बिना अप्रत्याख्यानावरण कषाय का अभाव नहीं होता। इसी प्रकार बाह्य में जब तक आरम्भ परिग्रह बना रहता है तब तक प्रत्याख्यानावरण कषाय का भी अस्तित्व बना रहता है। बाह्य आभ्यंतर दोनों प्रकार के त्याग को संयम कहते हैं। संयम से ही आत्मा पर पदार्थों के संयोग से छूट कर अपने आत्म गुणों की निकटता को प्राप्त होता है और यही अध्यात्म है। बाह्य त्याग के बिना न संयम है और न उसका प्रतिफल अध्यात्म। भोगाकांक्षा के कारण बाह्य त्याग में उदासीनता रहने पर अध्यात्म की गंध भी नहीं आ सकती। जैसे-जैसे संयम में वृद्धि होती जाती है, वैसे-वैसे कषाएं क्षीण होती जाती हैं और अध्यात्म प्रकट होता जाता है। आत्म निकटता रूप अध्यात्म प्रकट होने पर राग घटता है, वैराग्य उत्पन्न होता है। वैराग्य होने पर जीवन में संयम प्रकट होता है।

अंत में विद्वान् भारिल्ल जी ने प.पू. आचार्य श्री आध्यात्मिक सत्पुरुष कानजी स्वामी दोनों के अनुयायियों को यह सलाह दी है कि वे दोनों महापुरुषों के विचार और व्यवहार का अनुकरण करें तो सामाजिक एकता और शांति को असीम बल मिलेगा। सलाह निश्चय ही हितकारी और उपयुक्त है। किन्तु सर्वप्रथम तो सलाह देने वाले भारिल्ल साहब एवं अन्य कानजी स्वामी के अनुयायियों को पूज्य आचार्य श्री के विचार और व्यवहार का

जीवन में प्रयोगात्मक अनुसरण करने की पहल कर अपनी कथनी और करनी में एकात्मता सिद्ध करनी चाहिए थी। किन्तु वे सब आज भी प. पू. आचार्य श्री के विचार व्यवहार से उतने ही दूर खड़े हैं जितने पहले थे।

भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित महाबंध भाग 1 के प्रथम संस्करण की प्रस्तावना के पृष्ठ 14 पर पू. आचार्य श्री का एक उपदेश प्रकाशित हुआ है “पहले समयसार का नहीं महाबंध का ज्ञान चाहिए। पहले सोचो हम दुःख में क्यों पड़े हैं? क्यों नीचे हैं? गुरुमुख से प्रथम श्रावकाचार का अध्ययन करो। पश्चात् आत्म विषयक शास्त्र तथा अन्य शास्त्रों का अभ्यास करो। तीर्थंकर भगवान् से भी प्रश्न कर्ता गणधर ने साठ हजार प्रश्नों में अंतिम प्रश्न आत्मा के सम्बन्ध में पूछा था। आत्मा की चर्चा बालक्रीड़ा के कन्दुक के सदृश समझना उचित नहीं है। “कोरा उपदेश धोबी के समान है” आचार्य श्री के उक्त कथन पर तीव्र कड़ी प्रतिक्रिया हुई जो “आत्म धर्म” के दिसम्बर, 1997 के अंक में “व्यवहार मूढ़ जीवन की मिथ्या मान्यता” शीर्षक से प्रकाशित हुई।

वहाँ लिखा है “व्यवहार मूढ़ जीव कहता है” पहले समयसार नहीं पहले महाबंध चाहिए” वह आत्मार्थी कैसे हो सकता है?

अन्यत्र भेद विज्ञानसार पुस्तक पृष्ठ 156, 133, 146 में निम्न वाक्य देखें।

“कर्म का ज्ञान मोक्ष का कारण नहीं है परन्तु आत्म स्वभाव का ज्ञान मोक्ष का कारण है.....।”

“अज्ञानी कहते हैं पहले आत्मा का नहीं किन्तु कर्म का ज्ञान करना चाहिए।”

“कर्म को जानने से धर्म नहीं होता। मंद कषाय से कर्म के लक्ष्य से जो ज्ञान हो वह भी मिथ्या श्रुतज्ञान है।”

“इससे क्रमशः विकार बढ़कर वह ज्ञान अत्यंत हीन होकर निगोद दशा होगी”

इस प्रकार आचार्य श्री को कानजी स्वामी के अनुयायियों द्वारा अज्ञानी, मिथ्याश्रुत ज्ञानी, निगोदगामी, अनात्मार्थी आदि कहा गया है।

मायाचार से प्रेरित श्री भारिल्ल जी का यह आचरण कि एक ओर वे या उनके साथी पू. आचार्य श्री की अत्यन्त हीन शब्दों में निंदा करते हैं और दूसरी ओर वे उनकी प्रशंसा करते हुए उनके विचार व्यवहार का जीवन में अनुसरण करने की प्रेरणा देते हैं, क्या धर्म क्षेत्र में राजनीति का यह एक कुटिल खेल नहीं है, किसी भी निष्पक्ष व्यक्ति को ऐसे विरोधाभासी आचरण को देखकर श्री भारिल्ल जी के इस लेख में एक धोखे भरी राजनीति की गंध आए बिना नहीं रह सकती। काश विद्वत् प्रवर श्री भारिल्ल जी छलपूर्ण राजनीति से ऊपर उठकर शुद्ध हृदय से अपने समर्थकों को उक्त लेख के उपदेशात्मक अंश को गंभीरता से जीवन में अपनाने की प्रेरणा दे सकें तो निश्चय ही उनके लिखे अनुसार यह “एक नये युग का आरंभ” हो सकेगा अन्यथा तो यही माना जायेगा कि आदरणीय भारिल्ल जी का लेख मात्र एक राजनीतिक खेल है।

लुहाड़िया सदन,

मदनगंज किशनगढ़

305801 जिला-अजमेर (राज.)

अनासक्ति का अवदान

योगेन्द्र दिवाकर

ध्यान में रहते भोग ही भोग,
इसीलिये हम नहीं निरोग।
किन्तु सत्य-पुरुषार्थ करें तो,
महापुरुष बनने का योग ॥

अनासक्ति का अवदान, महान,
ज्यों किरणें देता दिनमान।
मुक्तिगामी पूज्य स्वतंत्र,
शाश्वत शिव होता भगवान् ॥

दिवा निकेतन,
पुष्पराज कालोनी, प्रथम पंक्ति,
सतना (म.प्र.)

मुक्तक

मनोज जैन 'मधुर'

सोय चेतन को हर पल जगाते रहो,
सप्त व्यसनों को मन से भगाते रहो।

किस घड़ी काल आकर दबोचे हमें,
मंत्र नवकार का गुणगुनाते रहो ॥

5/13 इन्द्रा कालोनी
बाग उमराव दुल्हा
भोपाल -10

आवश्यकता अन्वेषण-संस्थान की

इंजी. धरमचन्द्र जैन बाइल्य

समय की धड़कन को सुन पाने से एक ओर जहाँ दुर्घटनाओं से बचा जा सकता है। वहीं दूसरी ओर वर्तमान एवं भावी पीढ़ी का जीवन भी सम्हाला जा सकता है। वैज्ञानिकता आज की युवा पीढ़ी के जीवन की आधारशिला है किन्तु संयम कहिए या अनुशासन या नैतिक आचरण के परिप्रेक्ष्य में यह आधारशिला ठोस धरातल पर नहीं है। प्रतिकूलताएँ एवं प्रतिस्पर्धाएँ इतनी जटिल एवं भयावह हैं कि उनके अन्धड़ में आचार विहीनता का महारोग ग्रस लेगा। अतः आज आवश्यकता इस बात की है युवा एवं भावी पीढ़ी को जैन धर्म/ दर्शन में निहित जीवन जीने की कला सिखाई जाए। प्रश्न उठता है कैसे? भाषण या प्रवचन से विशेष कुछ होने वाला नहीं है, हाँ जैनधर्म में निहित विज्ञान के पक्ष का गहन अध्ययन किया जाए। देश विदेश की समस्त जैन समाज एक ऐसा केन्द्रीय शिक्षा एवं शोध संस्थान स्थापित करे जिसमें जैन धर्म में निहित विज्ञान के पक्ष पर अध्ययन एवं प्रयोग शालाओं के माध्यम से अन्वेषण किया जाए। ऐसे संस्थान की ठोस योजना हेतु, सर्व प्रथम तो समर्पित व्यक्ति चाहिए जो जैन समाज के मानस को इस योजना से जोड़ सकें। फिर अर्थ और भूमि की आवश्यकता स्वमेव पूर्ण हो ही जाएगी। आशीर्वाद चाहिए सभी जैनाचार्यों का जिससे यह कार्य सुगम हो जायेगा।

अब प्रश्न उठता है कि इस परियोजना का क्रियान्वयन करने हेतु धन कैसे जुटाया जाय। यदि हमारा समाज विभिन्न जगहों पर होने वाले पंचकल्याणक महोत्सवों एवं नित नये क्षेत्र एवं परियोजनाओं पर दृष्टिपात करें तो अपव्यय पर नियंत्रण किया जा सकता है तथा बचत की राशि से इस कार्य को क्रियान्वित कर सकते हैं।

पंचकल्याणक महोत्सव एक ओर जिनबिम्ब को संस्कारित करने की विधि है वहीं दूसरी ओर उससे धर्मप्रभावना भी होती है। किन्तु देखने में आता है कि समाज अकसर व्यवस्था तथा अनावश्यक क्रियाओं में बहुत अपव्यय कर देता है। उदाहरण के तौर पर कुछ लेखा शीर्ष जहाँ अपव्यय रोका जा सकता है निम्नलिखित है -

1. पंडाल का विस्तार वास्तु शास्त्र या प्रतिष्ठा ग्रंथों के अनुसार बनाया जाता है किन्तु देखने में आता है कि आधा पंडाल खाली रहता है। आयोजकों को अपने क्षेत्र विशेष में रहने वाले जैन समुदाय, उनकी रुचि तथा व्यस्तता को ध्यान में रखकर एवं पंचकल्याणकों में जाने का घटता हुआ आकर्षण देखकर ही पंडाल की साईज निर्धारित की जानी चाहिए इससे पर्याप्त बचत

हो सकती है।

2. सुरक्षा तथा सेनेटरी की व्यवस्था पर खर्च आवश्यक होता है, किन्तु जुलूस बैंडबाजे, हाथी-घोड़ा, गजरथ रंगीन पोस्टर में प्रचार सामग्री में खर्च सीमित किया जाना चाहिए।

3. धार्मिक अनुष्ठान में राजनेताओं का आमंत्रण बन्द ही कर देना चाहिए।

4. अकसर ऐसे अवसर पर रात्रि में सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं। व्यवसायिक कलाकार एक से दो घण्टे के कार्यक्रम का अच्छा खासा पैसा ले जाते हैं, कुछेक तो कहीं-कहीं प्रतिष्ठाचार्य, मुनिराज या प्रभावशाली व्यक्ति के माध्यम से अपना कार्यक्रम रखवा देते हैं। परिणामतः अपने ही समाज द्वारा तैयार किया हुआ कार्यक्रम या तो आगे पीछे-धकेला जाता है या रद्द करना पड़ता है। आयोजकों को दृढ़तापूर्वक एवं विनम्रता से ऐसे घुसपैठियों को मना कर देना चाहिए। इससे बचत तो होगी ही साथ ही अपने कलाकारों की प्रतिभा भी प्रकट होगी तथा मनोबल बढ़ेगा।

5. कार्यकारिणी समिति या न्यासियों की प्रारंभिक बैठक में ही मूर्ति को प्रतिष्ठित कराने के निम्न विकल्पों पर चर्चा कर निर्णय कर लेना चाहिए -

(अ) पंचकल्याणक कराना है, या

(ब) आसपास में हो रहे पंचकल्याणक में मूर्ति प्रतिष्ठित कराना है।

बाकी सभी कार्य नवनिर्मित मंदिर जैसे वेदीशुद्धि, ध्वजाशुद्धि, मूर्ति विराजमान करना, ध्वजारोहण, कलशारोहण आदि धूमधाम से किन्तु कम खर्च में किये जा सकते हैं।

उपरोक्त बातों पर यदि आरम्भ में मंथन कर निर्णय लें, तो अपव्यय से बचा जा सकता है। बचत की राशि जनकल्याणकारी योजनाओं में, नैतिक शिक्षा के प्रचार-प्रसार में तथा अन्वेषण संस्थान की स्थापना में लगाई जाए तो धर्म प्रभावना कार्यकारी एवं स्थायी होगी।

अन्वेषण संस्थान

आज इस बात की परम आवश्यकता है कि अखिल भारतीय दिगम्बर जैन समाज एक ऐसा केन्द्रीय शिक्षा संस्थान एवं अनुसंधान संस्थान स्थापित करे, जिसमें जैन दर्शन में निहित सामान्य तथा विशेष विषयों पर जैसे-पदार्थ विज्ञान, अणुविज्ञान, भौतिक शास्त्र, वनस्पति शास्त्र, रसायन शास्त्र, भूगोल एवं खगोल शास्त्र, पर्यावरण सुरक्षा, सामाजिक व्यवस्था, न्यायशास्त्र, इत्यादि

एवं प्रबंधन के सार्वभौमिक, सार्वकालिक सिद्धान्तों पर अन्वेषण किया जा सके।

इस संस्थान में बहुभाषाविद् विद्वान या रिसर्च स्कालर हों, जिन्हें आगम का पूर्ण ज्ञान हो, जो वैज्ञानिकों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर समर्पण भाव से कार्य कर सकें। इन जैन दर्शन के विद्वानों का कार्यक्षेत्र जैनागम में निहित वैज्ञानिक तथ्यों, सूत्रों का तथा गाथाओं का संदर्भ सहित अर्थ अंग्रेजी तथा हिन्दी में वैज्ञानिकों के समक्ष रखें। वैज्ञानिक उनका आधुनिकतम खोज से तुलनात्मक अध्ययन कर अन्वेषण के नये आयाम लिपिबद्ध कर प्रयोगशालाओं में अनुसंधान हेतु भेजें।

ये अध्ययन आरम्भ में तो प्राथमिक स्तर के हो सकते हैं, बाद में मध्यम एवं उच्चस्तरीय कार्यक्रम विकसित किये जा सकते हैं। उदाहरण के तौर पर खाद्य एवं अखाद्य आहार एवं पेयजल सम्बन्धी मर्यादा, जीवाणुओं की उत्पत्ति, उनकी उत्पत्ति के स्थान, इत्यादि के आलेख अनुसंधान हेतु निर्देश एवं नमूने देकर शासकीय एवं निजी प्रयोगशालाओं के माध्यम से उल्लिखित तथ्यों की पुष्टि कराई जा सकती है। प्रयोगशाला के विश्लेषणों का संकलन कर आगम ग्रंथों का संदर्भ एवं उनकी प्राचीनता देकर विश्वस्तरीय पत्रिकाओं में प्रकाशित करना चाहिए।

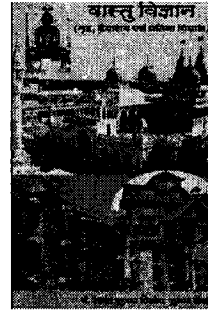
संस्था छोटे स्तर से आरम्भ की जाए। पूरी परियोजना को तीन या चार भागों में विभाजित किया जा सकता है एवं प्रयोगशाला स्थापित करने का कार्य बाद में एकीकरण विधि से किया जा सकता है। यह कार्य आज की युवा एवं भावी पीढ़ी को विवेक एवं आस्था का धरातल प्रदान करने में विशेष कार्यकारी हो सकता है। पूज्य श्री 108 आचार्य देशभूषण जी महाराज के शब्दों में : “विभिन्न धर्मानुयायी अपने गुड को मिश्री के रूप में संसार के सामने अपने अपने धर्म का प्रचार कर रहे हैं, तब जैन समाज अपने मिश्री के समान अंदर बाहर से पूर्ण मिष्ठ जैन धर्म को संसार के समक्ष यथेष्ट रूप संसार के समक्ष रखने में संकोच कर रहा है। जैन समाज का यह महान अपराध है और इस अपराध का परिणाम कठोर बादाम, नारियल की तरह अवश्य भुगतना पड़ेगा। दण्ड केवल शारीरिक मारपीट का ही नहीं होता है। धिक्कार घृणा का दण्ड भी सज्जन पुरुष के लिए बड़ा भारी एवं असहनीय होता है” समाज को एक सूत्र में पिरोने के लिए यह संस्था कार्यकारी हो सकती है।

अतः मैं चतुःसंध से निवेदन करता हूँ कि लेख के पठनोपरान्त यदि जैचे तो क्रियान्वयन करने की दिशा में आगे बढ़ें। मेरा योगदान समर्पित भाव से होगा।

ए- 92, शाहपुरा,
भोपाल 462039 (म.प्र.)

ग्रन्थ समीक्षा

- पुस्तक का नाम - वास्तु विज्ञान
(गृह देवालय एवं प्रतिमा विज्ञान)
- लेखक - पं. सनतकुमार विनोद कुमार जैन
- प्रकाशक - देवेन्द्र कुमार (अजय) अभिषेक जैन
(बिजली वाले) 1/6013 कबूलनगर
शाहदरा, दिल्ली-32
- संस्करण - प्रथम, 2004, पृष्ठ - 12+130,
- मूल्य - 35.00 रुपये



लगभग एक दशाब्दी से वास्तु ज्ञान का प्रचार-प्रसार बड़ी तेजी से हुआ है। नवीन भवन का निर्माण कराने वाले तो वास्तुशास्त्रियों से सलाह लेते ही हैं पुराने मकानों में भी वास्तु के अनुसार परिवर्तन/परिवर्धन तेजी से हो रहा है। परन्तु यह विधा/विद्या कोई नई नहीं है जैनागम में इसका उल्लेख मिलता है साथ ही 'प्रासाद मंडन', वास्तुप्रकरण 'वत्थुविज्जा' आदि स्वतंत्र ग्रंथ भी जैन साहित्य में मिलते हैं। आवश्यकता थी एक संक्षिप्त किन्तु सर्वांग पुस्तक प्रस्तुत की जाये 'वास्तुविज्ञान' इसी कमी को पूरा करने का सार्थक एवं प्रशंसनीय प्रयास है।

भ्रातृद्वय पं. सनत कुमार विनोद कुमार जैन साहित्य/विधिविधान में जाना पहचाना नाम है। सार्थ सिद्धचक्र विधान से उन्हें प्रभूत यश और प्रतिष्ठा मिली है।

'वास्तुविज्ञान' तीन खंडों (अध्यायों) में विभक्त हैं प्रथम खण्ड समुच्चय, द्वितीय खण्ड गृह वास्तु और तृतीय खण्ड देवालय वास्तु। वास्तु शास्त्र का आरम्भिक ज्ञान प्राप्त करने के इच्छुक महानुभावों के साथ इस विषय में रूचि रखने वालों को पुस्तक अत्यन्त उपादेय है स्वयं लेखकद्वय के अनुसार 'यह पुस्तक वास्तु ज्ञान की पूर्ण पुस्तक नहीं कही जा सकती, इसमें विषय को संक्षिप्त किया है।' पुस्तक में स्थान-स्थान रेखा चित्रों के माध्यम से विषय को स्पष्ट किया गया है गणतीय माप देने में परिश्रम किया गया है। कलश, ध्वजा, ध्वजदंड आदि का भी स्वरूप बताया गया है। जन कल्याण की भावना से लिखी गयी इस कृति का सुधी पाठकजन भरपूर लाभ उठायेंगे ऐसी मंगल भावना है।

डॉ. ज्योति जैन

जुलाई 2004 जिनभाषित 23

किटकैट चॉकलेट में कोमल बछड़ों का मांस

चॉकलेट, टॉफी, च्युईंगम स्वास्थ्य के लिये हानिकारक हैं। बच्चों की सेहत पर गहरा असर डालती, लुभावनी लगती चाकलेट मांसाहारी भी है। किटकैट जैसी मँहगी चाकलेट में बछड़े का मांस भी मिलाया जाता है, आखिर क्यों ?

चॉकलेट, ब्रेड, बेबीफूड और बिस्कट का उपयोग आमतौर पर किया जा रहा है। मगर बहुत कम लोग जानते हैं कि इनमें क्या मिलाया जाता है। किटकैट बिस्कट में बछड़े का मांस मिलाया जाता है। बिस्कट में अंडे मिलाए जाते हैं और बेबीफूड (बच्चों का आहार) तो बच्चों के लिए जानलेवा साबित हो रहा है। ऐसे उत्पादों की सूचना और विज्ञापन पर इन्हें लिखना कानूनन जरूरी नहीं है।

चॉकलेट बच्चों की जान का दुश्मन बनी हुई है। लॉलीपॉप, च्युईंगम, चॉकलेट खाने से बच्चों की सेहत गिरती है और वे कई रोगों का शिकार हो सकते हैं। नेस्ले की किटकैट चॉकलेट में छोटे बछड़ों के शरीर से प्राप्त मांस (रेनेटस) मिलाया जाता है। इसकी पुष्टि नेस्ले यू.के. लिमिटेड की न्यूट्रिशन ऑफिसर श्रीमती वाल एंडरसन ने की है। अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिका 'यंग जैन्स' में बाल एंडरसन का ऐसा ही पत्र प्रकाशित किया है, जिन्होंने एक पत्र के जबाब में लिखा है किटकैट में कोमल बछड़ों का रेनेट (मांस) होने से शाकाहारियों के लिए अखाद्य है। बच्चों को प्रिय लगने वाली ऐसी चीजें उनकी सेहत खराब करती हैं। चॉकलेट, बिस्कट बच्चों को ज्यादा देना हानिकारक है, यह सब जानते हैं, मगर इससे और अधिक खतरे हैं, जिसमें अधिकांश लोग अनभिज्ञ हैं। लालीपॉप, च्युईंगम, चॉकलेट, टॉफी बच्चों की सेहत और आदतों पर विपरीत असर डालती है। बच्चों का आहार कम हो जाता। शक्कर से बनी इन वस्तुओं से बच्चों का पाचन तंत्र बिगड़ता है। पेट की खराबी से बच्चे सुस्त व चिड़चिड़े हो जाते हैं। दांतों में केविटी (छिद्र) हो जाती है। केविटी में सूक्ष्म कीटाणु बढ़ जाते हैं जो और जीवाणुओं के साथ शक्कर मिलने से एसिड बन जाता है और यह दांतों के लिए अत्यंत हानिकारक होता है।

लखनऊ की पर्यावरण प्रयोगशाला में वैज्ञानिक एस.सी. सक्सेना द्वारा किए गए शोध से ज्ञात हुआ है कि चॉकलेट में ज्यादा निकल होने से बच्चों को कैंसर भी हो सकता है। इसके अतिरिक्त इसका प्रभाव लीवर तथा पित्ताशय पर भी पड़ता है, चर्मरोग हो सकता है और असमय बाल सफेद हो जाते हैं। श्री सक्सेना का दावा है कि 40 ग्राम चॉकलेट में भारत में 600 से

1340 माइक्रोग्राम निकल देखने में आता है, जबकि यह 160 माइक्रोग्राम से अधिक नहीं होना चाहिए।

अमरीकी चॉकलेटों में अपेक्षाकृत कम निकल होती है। टाफियों में कृत्रिम रंगों के रूप में पोन सो, कार्मोसिन, फ्रास्ट रेड ई, अमारंध, ऐरी प्रीसीन, टाइड्राजीन, सनसेट यलो, इंडिगो कारमीन, लिंट ब्लू, ग्रीन रस और फास्ट ग्रीन रंग मिलाए जाते हैं। इन 11 रंगों के अतिरिक्त रंगों का उपयोग गैर कानूनी माना जाता है। इन रंगों की मात्रा भी एक किलो पदार्थ में 0.2 ग्राम से अधिक नहीं होनी चाहिए। यद्यपि विश्व स्वास्थ्य संगठन ने अमारंध रंग को मान्य नहीं किया है, तथापि आज इसका उपयोग ज्यादा हो रहा है।

कनाडा, रूस और अमेरिका में किए गए विश्लेषण से ज्ञात हुआ है कि अमारंध रंग सिर्फ कैंसर की उत्पत्ति ही नहीं, अपितु गर्भस्थ शिशुओं में जन्मजात विकृति और न्यूनता उत्पन्न कर सकता है। गर्भवती महिलाओं को चॉकलेट से सावधान रहने की आवश्यकता है। जर्मनी में किए गए परीक्षण के अनुसार सनसेट यलो का अधिक सेवन अंधत्व ला सकता है। ये रसायन बच्चों की पाचनशक्ति मंद कर उनके विकास में बाधक बनते हैं।

चरबी से चॉकलेट

श्रीमती मेनका गांधी ने अपने एक शोध लेख में स्पष्ट किया है कि कुछ चॉकलेटें चरबी के गिरे हुए टुकड़ों से बनाई जाती हैं। अब देखें ब्रेड और बिस्कट का स्वाद। 'इंटेलीजेंट इन्वेंटर' के 9 अगस्त 2002 के अंक में प्रकाशित एक लेख में निवेदिता मुखर्जी ने लिखा है कि गेहूं से तैयार आटा विषयुक्त होता है। द कन्जूमर एजुकेशन एंड रिसर्च ने देशभर से खरीदे 13 प्रकार के आटों के नमूनों की परीक्षा की थी और पाया था कि इन सभी में डी.डी.टी. सहित लीडेन और इथेन जैसे जन्तुनाशक रसायनों के अंश मिले हुए थे।

ब्रेड के आटे में पाये जाने वाले उक्त रसायन फसल उगाने के समय उपयोग में लाए जाते हैं, जबकि इनके उपयोग पर पाबंदी लगी हुई है। डी.डी.टी. मस्तिष्क और ज्ञानतंत्र को हानि पहुँचाता है, एल्डीन से कैंसर होने का भय होता है तथा इथेन

जैसे आर्गेनो फास्फेट्स से श्वसनतंत्र के ऊपर वाले भाग में मवाद हो जाता है, पेट में पीड़ा उत्पन्न होती है, चक्कर आते हैं। वमन भी होता है, सिर में झटके लगते हैं, अंधेरा सा प्रतीत होता है और मन में कमजोरी महसूस होती है।

सीईआरसी की पत्रिका 'इनसाइट' की सम्पादक प्रीति शाह ने लिखा है- 'एक प्रकार से विचार करने पर मालूम होता है कि विषयुक्त रसायनों की मिलावट से अधिक भय तो छोटे बच्चों, गर्भवती स्त्रियों, वृद्धों और कम प्रतिकारक शक्तिवाले रोगियों को बना रहता है। सीईआरसी ने ब्रेड की 13 ब्रांडों का उल्लेख भी किया है, जिनका परीक्षण किया गया था। यदि ऐसी प्रख्यात ब्रांडों में से ऐसे जहरीले रसायन हों तो यत्र-तत्र तैयार की जाती, सुंदर और मनोहर पैकिंग वाली तथा आकर्षक विज्ञापनों वाली दूसरी ब्रांडों की तो बात ही क्या करना।'

जहाँ तक बिस्किट की बात है, खाद्य पदार्थ मिलावट प्रतिबंधक नियम अ- 18/07 के अनुसार आइसक्रीम की तरह बिस्किट में भी अंडों का उपयोग करने की अनुमति दी गई है, लेकिन बिस्किट में अंडों का मिश्रण करने पर उसकी सूचना अथवा विज्ञापन भी जारी करना अनिवार्य नहीं है। बेबी फूड्स के बारे में क्लोड अल्वारीस लिखते हैं कि बच्चों को मार डालने के लिए अनेक मार्ग हैं, जिनमें बेबीफूड भी एक है। आटा पचाने की क्षमता नहीं रखने वाले बच्चों के पाचन तंत्र पर जब मैदे से बनाए हुए बिस्किटों का आक्रमण होता है, तो उन्हें बीमार होने से कौन रोक सकता है।

स्वस्थ जीवन के लिये आवश्यक है कि बेकरी से बने पदार्थों को दूर से ही सलाम कर लिया जाए। बेकरी उत्पादों में दो मुख्य हानिकारक खाद्य पदार्थ होते हैं- वनस्पति और मैदा। बेकरी के बटर बिस्किट में करीब आधा तो वनस्पति घी होता है। नान खटाई में 35 से 40 प्रतिशत वनस्पति और 20 प्रतिशत शक्कर तथा शेष मैदा होता है। टोस्ट और डोग्गी बिस्किट में 20 से 25 ग्राम वनस्पति डाला जाता है। वनस्पति घी में 30 से 50 प्रतिशत चरबी (ट्रांसफेटी एसिड) होता है।

न्यू इंग्लैंड जर्नल ऑफ मेडीसिन में प्रसिद्ध हुए एक प्रयोग के अनुसार ट्रांसफेटी एसिड लेने से रक्त में हानिकारक (एल.डी.एल.) कोलेस्ट्रॉल की मात्रा कम हो जाती है। उधर मैदा बनाने की प्रक्रिया में गेहूँ के रेशे प्रायः निकाल दिए जाते हैं, जबकि रेशे मालवरोध को दूर करते हैं। रक्त के ग्लूकोज और कोलेस्ट्रॉल को नियंत्रित रखने के लिए भी रेशे जरूरी हैं। डायबिटीज और हृदयरोगियों के लिए वनस्पति और मैदा दोनों ही नुकसानदायक हैं।

पर्यावरण ऊर्जा टाइम्स, मार्च 2003 से साभार

ग्रन्थ समीक्षा

पुस्तक का नाम	- प्रतिष्ठा पराग (मंदिर-वेदी प्रतिष्ठा-कलशारोहण विधि)
संकलन	- पं. गुलाबचन्द 'पुष्प'
सम्पादन	- ब्र. जयकुमार 'निशान्त'
प्रकाशक	- अ.भा. दि. जैन शास्त्री परिषद 261/ 3 पटेल नगर मुजफ्फरनगर (उ.प्र.)
संस्करण	- प्रथम, 2004, पृष्ठ - 224,
मूल्य	- 60.00 रुपये

जैन साहित्य में प्रतिष्ठा सम्बन्धी ग्रन्थों की अपेक्षाकृत न्यूनता है इसका एक कारण सुप्रसिद्ध प्रतिष्ठाचार्य पं. नाथूलाल जी शास्त्री के शब्दों में यह है- 'प्रतिष्ठाचार्य चाहते हैं कि उनकी क्रिया विधि एवं मंत्र संस्कार क्रियाएं गुप्त ही रहें।' वर्तमान नवोदित प्रतिष्ठाचार्यों /विधि विधान कर्त्ताओं तथा सामान्यजनों को श्रद्धेय पं. गुलाबचन्द जी पुष्प का आभार मानना चाहिए कि उन्होंने प्राचीन ग्रंथों के आधार पर 'प्रतिष्ठा पराग' का संकलन किया है। आज प्रतिष्ठा सम्बन्धी कार्य बढ़ गये हैं, उसी अनुपात में प्रतिष्ठाचार्यों की भी आवश्यकता है। नवोदित प्रतिष्ठाचार्य आगमानुसार क्रियाएँ कैसे करायें इसका सप्रमाण विवेचन प्रस्तुत कृति में है पं.पुष्प जी जैन जगत के सिद्धान्तज्ञ विद्वान् एवं अनुभव वृद्ध प्रतिष्ठाचार्य हैं। उन्होंने क्रियाविधि में कभी कोई समझौता नहीं किया। अनुष्ठान तभी सफल होता है जब वह पूर्ण विधि विधान से हो। यह शिक्षा आज के नवीन प्रतिष्ठाचार्यों को लेना चाहिए।

सम्पादन में ब्र. जयकुमार निशान्त जी ने विशेष श्रम किया है प्रूफ संशोधन में परिश्रम अधिक किया गया है। जो शुभ लक्षण है। पूर्व में भी ये पिता-पुत्र प्रतिष्ठा रत्नाकर जैसा हीरा दे चुके हैं।

'प्रतिष्ठा पराग' की विशिष्ट उपलब्धि जनमानस को यही है कि इसमें क्रियायें विस्तारपूर्वक और समझाकर इस प्रकार बताई गयी हैं कि सुधीजन यह मांगलिक क्रियाएं स्वयं भी करा सकते हैं। ऐसी क्रियाओं में दीपावली पूजन, श्रुतपंचमी, गृहप्रवेश, वाहन शुद्धि, सल्लेखना पूर्वक अंतिम शव संस्कार विधि आदि को लिया जा सकता है। पुस्तक के अन्त में विभिन्न मंत्रों के चित्र दिये गये हैं साथ ही अष्ट प्रातिहार्य, अष्ट मंगल द्रव्य के चित्र दिए हैं। बीच में भी जहाँ आवश्यक हुआ है वहाँ चित्रों के माध्यम से विषय को स्पष्ट किया गया है। संक्षेप में यह कृति प्रतिष्ठा के सागर को पुस्तक की गागर में भरने वाली कृति है।

डॉ. ज्योति जैन

जुलाई 2004 जिनभाषित 25

सैर/व्यायाम/टहलना

डॉ. रेखा जैन

निरोग काया ही दुनिया की सबसे बड़ी दौलत है। उसके बगैर जीवन की हर सुख सुविधा बेमानी हो जाती है। कोई कितना ही धनवान् हो, शरीर रोगी हो मन दुखी रहे तो सारा रुपया पैसा धरा रह जाता है। सच पूछें तो आदमी को जन्नत भी मिल जाए और काया का सुख न हो तो वह सुखी नहीं हो सकता। पर निरोग काया और स्वस्थ सुखी मन के लिए जीवन में कुछ सरल नियमों को गूथ लेना बेहद जरूरी है। हष्ट-पुष्ट बने रहने के लिए जिस प्रकार शुद्ध व सन्तुलित आहार जरूरी है, उसी प्रकार नियमित व्यायाम संतुलित व्यवहार और मानसिक सुख संतोष की भी जरूरत होती है, रोजाना व्यायाम करने से अनेक फायदे हैं। इससे मांस पेशियों की कसरत होती है। हड्डियों को ताकत मिलती है, दिल और फेफड़े मजबूती पाते हैं। रक्त संचार सुचारू होता है। रक्तचाप और ब्लडशुगर संयत रहते हैं। और मन मस्तिष्क को ताजगी मिलती है।

नियमित व्यायाम से दिल की कामकाजी ताकत बढ़ती है। और वह थोड़ी सी आक्सीजन पाकर ही ज्यादा काम कर पाता है। दिल की कोरोनरी धमनियों में खून का दौरा बढ़ जाता है। और खून की आक्सीजन संवहन क्षमता बढ़ जाती है। नतीजतन दिल को ज्यादा आक्सीजन पहुँचने लगती है। जिससे उसकी कार्यक्षमता बढ़ जाती है। व्यायाम करने से धमनियों में खून के थक्के बनने की प्रवृत्ति भी घटती है। प्लेटलेट रक्त कणों का चिपचिपाना और खून का गाढ़ापन घटता है। इससे दिल का दौरा पड़ने और लकवा होने की आशंका कम हो जाती है। व्यायाम मन के लिए भी टॉनिक है रोजाना व्यायाम करने से शरीर में ऐसे जैव रसायन उत्पन्न होते हैं। जिनसे मन प्रफुल्लित महसूस करता है। नियमित व्यायाम से दिल को सुरक्षा देने वाले कोलेस्ट्रॉल घटक (हाई डेंसिटी लाइपोप्रोटीन) एच.डी.एल.की मात्रा बढ़ती है। और नुकसान पहुँचाने वाले जोखिम भरे कोलेस्ट्रॉल (लो डेंसिटी लाइपोप्रोटीन) एल.डी.एल. की मात्रा कम हो जाती है। कुछ परीक्षणों में तो यहाँ तक देखा गया है कि कई लोगों के लिए व्यायाम करना एक समय के बाद व्यसन बन जाता है। इसका सम्बन्ध भी शरीर की जैव रासायनिकी से जोड़ा गया। व्यायाम से शरीर के कुछ ऐसे प्राकृतिक जैव रसायन पैदा होते हैं। जो हमारे दुख दर्द को मिटाते हैं। और उसकी रासायनिक संरचना मारफीन जैसी होती है। व्यायाम करने से इम्यून सिस्टम (कुदरती बचाव प्रणाली) भी अधिक सशक्त बनती है।

उम्र बढ़ाता है पैदल चलना :- बोस्टन विश्वविद्यालय के डॉ.लेविन का मत है कि सप्ताह में मात्र तीन दिन 45 मिनट रोज का भ्रमण स्वस्थ जीवन के लिए पर्याप्त है। भ्रमण पर स्टेन फोर्ड विश्वविद्यालय अमेरिका में शोध अनुसंधान हुए 12 किलोमीटर प्रति सप्ताह चलने से मृत्यु के खतरे 21 प्रतिशत कम और 40-50 किलोमीटर प्रति सप्ताह पैदल चलने में लगभग 10 प्रतिशत रह जाते हैं। इसलिए हमारे आचार्यगण, साधुजन स्वस्थ सुखी हम लोगों की अपेक्षाकृत अधिक रहते हैं।

मस्तिष्क की क्षमता बढ़ाता है टहलना:- सैन फ्रांसिस्को स्थित कैलीफोर्निया यूनिवर्सिटी की किस्टीन याफे के मतानुसार जीवन के आठ दशक देख चुकी महिलाएं भी नियमित रूप से पैदल चलकर व व्यायाम करके अपने मस्तिष्क को आयु के प्रभाव से बचा सकती हैं। इसके विपरीत जो महिलाएं कम चलती हैं व कम व्यायाम करती हैं उनके मस्तिष्क की सक्रियता पहले से कम हो जाती है।

टहलते/सैर/व्यायाम करते समय ध्यान रखने योग्य बातें :-

1. आचार्य चरक ने व्यायाम के सम्बन्ध में चरक संहिता 7/31 में लिखा है कोई भी ऐसी शारीरिक क्रिया या चेष्टा जो उचित हो, हितकारी हो और मन को अच्छी लगे, जो शरीर में सुडोलता लाए और बल बढ़ाए इस क्रिया का नाम व्यायाम है।

2. टहलते समय बड़े डग भरना किसी भी मायने में फायदे मंद नहीं है। सैर करते वक्त कदम उतने ही बड़े लें जितने की आदत हो। कदमों की लम्बाई आराम देह ही होनी चाहिए, तनाव पैदा करने वाली नहीं।

3. शरीर जिस रफ्तार को आसानी से सह सके वही गति अपनाएं। हाँ अगर स्वास्थ्य ठीक ठाक हो तो धीरे-धीरे गति को बढ़ा लेना चाहिए। वैसे तेज रफ्तार से ही टहलना भरपूर व्यायाम है।

4. कम से कम 45 मिनट प्रातः एवं 30 मिनट शाम को टहलना चाहिए। करीब 2 से 3 किलोमीटर प्रातः और 1 से 2 किलोमीटर शाम को चलना चाहिए।

5. टहलते समय बांहों को कोहनियों पर 90 अंश के कोण पर मोड़ कर आगे पीछे कुदरती तौर पर स्विंग करें। इससे प्रायः शरीर कर गति स्वतः बढ़ जाती है। इसका सम्बन्ध शरीर के बायो मेकेनिक्स या जैव प्रक्रिया से है। बांहों और टांगों के बीच

सदा एक सन्तुलन रहता है। अगर हम बाहें सीधी करके चलें तो टांगों की गति धीमी हो जाती है। बाहें मोड़ कर चलें तो टांगों की रफ्तार कुछ तेज हो जाती है।

6. चलते वक्त गति बढ़ाने के लिए कमर के ऊपर के भाग को झुकने देना वाजिब नहीं है। इस झुकाव से कंधों, छाती और रीढ़ में तनाव पैदा होता है। जबकि व्यायाम का एक मकसद निःसन्देह ही शरीर को तनाव रहित करना है।

7. चलते समय किसी से बातचीत नहीं करें। एकाग्रचित्त होकर संभव हो तो अपने इष्ट का चिंतन करते हुए या फिर मैं स्वस्थ हो रहा हूँ या हूँ ऐसी भावना को दोहराते हुए चलें। यदि आप बातचीत करते हैं तो मुँह के खुलने पर श्वाँस मुँह के माध्यम से श्वाँस नली में जायेगी जिससे गला सूखेगा और प्यास लगेगी जो आपमें थकान पैदा करेगी और यदि आपने टहलने के बीच पानी पिया तो पेट में पानी जाने पर भारीपन लगेगा कभी-कभी नसों में सूजन भी आ जाती है। और पानी पीने से शरीर का तापमान जो व्यायाम के कारण बढ़ा था अचानक गिर सकता है जिससे ब्लडप्रेसर जैसी समस्या से पीड़ित व्यक्ति में और समस्या बढ़ सकती है। पानी पीने से टहलने की एकाग्रता भंग हो जाती है और व्यवधान जैसा आ जाता है।

8. **नाक से श्वाँस लें** - टहलते वक्त सारी श्वाँस नाक से लें। मुँह बिल्कुल न खुला छोड़ें। श्वाँस नाक से लेने पर हमारा ब्रीथिंग पावर बढ़ता है। श्वसन सम्बन्धी विकार व रक्त विकार दूर होते हैं। अस्थमा और डायबिटीज जैसे रोगों में लाभ मिलता है।

9. **अधिक व्यायाम हानिकारक** - अति व्यायाम के कारण प्यास की अधिकता, रस, धातुओं का क्षय, मांसपेशियों में लेक्टिक एसिड, साइट्रिक एसिड बढ़ने से रक्त चाप बढ़ना, खांसी, बुखार, उल्टी आदि कष्ट हो सकते हैं।

10. सैर हफ्ते में कम से कम पांच दिन जरूर करें। वैसे प्रतिदिन का व्यायाम ही लाभकर है।

11. सैर पर निकलते समय यह ध्यान रखें कि तन पर उपयुक्त वस्त्र हों, ढीले वस्त्र जो मौसम के अनुकूल हों और पावों में केनवास के आरामदेह जूते भी कसे हों तो बेहतर होगा। समय बचाने के चक्कर में इन छोटी, मगर महत्वपूर्ण बातों पर ध्यान न देना कष्टकारी सिद्ध हो सकता है।

12. सुबह सैर पर लाने से पहले शौचादि से निवृत्त होना चाहिए और खाली पेट एक दो गिलास पानी जितना सम्भव हो सके पानी पीकर सैर पर जाना चाहिए, लेकिन बीच में पानी नहीं पीना चाहिए।

13. सैर पर बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू पान, गुटखा नहीं खाना चाहिए।

14. भरपेट भोजन करने पर सैर करना हानिकारक है। भोजन के करीब तीन घंटे बाद ही सैर की जा सकती है। चहलकदमी करना अलग बात है।

15. **आखिरी बात** - अगर श्वाँस रोग (बहुत बड़ा हो) हृदय रोग, अत्यधिक उच्च रक्तचाप, जिनका हृदय जन्म से कमजोर हो, हृदय के वाल्व त्रुटीपूर्ण या क्षतिग्रस्त हो, जिसे मिरगी का रोग हो, जो पैरों में सन्धिवात से पीड़ित हो, जिसके पैरों में चोट या परेशानी हो, पथरी, पीलिया, मानसिक रोग से ग्रसित हो, जिसे दिनभर अत्यधिक शारीरिक श्रम का कार्य करना हो, जो किसी लम्बी बीमारी से हाल ही में उठा हो ऐसे व्यक्तियों को सैर, टहलना, व्यायाम नहीं करना चाहिए।

16. व्यायाम करके आकर तत्काल स्नान नहीं करना चाहिए। कम से कम पसीने को सूखने तक रुकना चाहिए। हृदय की धड़कन सामान्य हो जाने तक न तो खाना-पीना चाहिये न ही कोई कार्य करना चाहिए।

17. यदि आप किसी बीमारी से ग्रस्त हैं तो सैर का कार्यक्रम अपनाने से पहले डाक्टर से सलाह अवश्य लें।

यह सोच सरासर गलत है कि दिल का दौरा पड़ चुकने के बाद आदमी सैर करने लायक नहीं रहता। दरअसल बेहतर तो इसी में है कि दौरे के कुछ हफ्ते बाद ही अगर स्वास्थ्य अनुमति दे तो डाक्टरी राय से सैर का पूरा एक क्रमबद्ध केलेण्डर बनाकर उसे अमल में लाना चाहिए। इससे दिल की सेहत बढ़ती है। बंद रुकी हुई कोरोनरी धमनियों के हिस्सों में नई रक्त धमनियां फूट आती हैं, जिससे दिल को खुराक मिलने लगती है। डायबिटीज के रोगियों के लिए भी सैर बहुत फायदेमंद है। नियमित सैर करने से शुगर का नियंत्रण और संतुलन बेहतर बनता है। जोड़ सूजे हों, साँस फूलती हो या किसी भी कारण से कोई परेशानी हो तो यह सोचना सरासर गलत है कि मन में संकल्प हो तो रोग दूर भाग जाएगा।

अंत में हमारा स्वास्थ्य तभी ठीक हो सकेगा जब हमने पूर्व जन्म में रोगियों की सेवा की होगी, असहाय की सहायता की होगी, औषधि दान, आहारदान दिया हो। वर्तमान में दूसरे के रोगों के प्रति सहानुभूति, सद्भावना रखनी होगी जीवन में मैत्री की भावना रखनी होगी क्योंकि मिलता वही है जो हम बोते हैं।

पुलिस ट्रेनिंग कालेज सागर (म.प्र.)

विनय, वात्सल्य, एकता तीनों रत्नत्रय के समान हैं समाज की संरचना में इनका बहुमूल्य योगदान है।

सागर बूंद समाज

जिज्ञासा-समाधान

पं. रतनलाल बैनाड़ा

प्रश्नकर्ता : कल्पेश जैन, बारामती

जिज्ञासा: क्या उत्सर्पिणी के छठेकाल एवं पंचमकाल में, वर्तमान की तरह विवाह आदि नहीं होते हैं?

समाधान : उत्सर्पिणी के छठेकाल में स्त्री, मनुष्य और तिर्यच नग्न रहकर पशुओं जैसा आचरण करते हुए क्षुधित होकर वन प्रदेशों में धतूरे आदि वृक्षों के फल, फूल एवं पत्ते आदि खाते हैं। उस काल के प्रथम भाग में आयु 15-16 वर्ष और ऊँचाई एक हाथ प्रमाण होती है। इसके आगे आयु आदि बढ़ती जाती है। 21000 वर्ष के अतिदुखमा काल के समाप्त होने पर दुखमा नामक पंचम काल आता है। इस पंचम काल में आहार आदि व्यवस्था छठे कालवत् रहती है। किन्तु आयु 20 वर्ष और ऊँचाई 3-3^{1/2} हाथ होती है। दुखमा काल के एक हजार वर्ष शेष रहने पर इस भरत क्षेत्र में 14 कुलकरों की उत्पत्ति होने लगती है। उस समय विविध प्रकार की औषधियों के रहते हुए भी पृथ्वी पर अग्नि नहीं रहती। तब कुलकर विनय से युक्त मनुष्यों को उपदेश देते हैं कि मथकर आग उत्पन्न करो और भोजन पकाओ, विवाह करो और बांधव आदिक निमित्त से इच्छानुसार सुखों का उपभोग करो। जिनको कुलकर इस प्रकार की शिक्षा देते हैं, वे पुरुष अत्यन्त म्लेच्छ होते हैं। अन्तिम कुलकर के समय से विवाह विधियाँ प्रचलित हो जाती हैं।

भावार्थ : इस प्रकरण से स्पष्ट है कि अंतिम कुलकर, जो दुखमाकाल के अन्त में होते हैं, उनके काल से विवाह विधि प्रारम्भ होती है। इससे पूर्व पूरे छठेकाल और पंचमकाल में विवाह विधि नहीं होती। देखें -तिलोपपण्णत्ति, अधिकार-4, गाथा 1588 से 1596।

जिज्ञासा : पहली प्रतिमा में अष्टमूलगुणधारण और सप्त व्यसन का त्याग करना होता है तथा इसके अतिचार भी नहीं लगने दिये जाते। कृपया इनके अतिचारों का वर्णन करें?

समाधान : इस प्रश्न के समाधान में "सागार धर्मामृत" अधिकार 3 में अच्छी तरह प्रकाश डाला गया है। उसी के अनुसार यहाँ लिखा जा रहा है।

1. **मद्य त्याग के अतिचार** 'चौबीस घंटे बाद भी आचार, मुरब्बा आदि तथा दही, छाछ का सेवन करना। वैद्यक गीली दवाईयों का, होम्योपैथिक दवाईयों का, एलोपैथिक दवाईयों का सेवन करना। तम्बाखू, भांग आदि नशीले पदार्थ खाना, बीड़ी, सिगरेट पीना, कोल्ड-ड्रिंक पीना, शराब आदि नशीले पदार्थ बेचना।'

2. **मांस त्याग के अतिचार** : चमड़े से सम्बन्धित हींग खाना, चलित रस वाले दूध-दही आदि को खाना, मर्यादा के बाद पकवान खाना। अशुद्ध दवाएं बेचना।

3. **मधु त्याग के अतिचार** : गुलकन्द खाना, मधु मिश्रित दवाएं लेना, एनिमा, अंजन आदि में मधु प्रयोग करना। शहद बेचना।

4. **जुआ व्यसन त्याग के अतिचार** : किसी भी प्रकार का सट्टा करना, हार-जीत की भावना से होड़ लगाना तथा ताश-पत्ते आदि खेलना। लॉटरी खरीदना आदि।

5. **वेश्या व्यसन त्याग के अतिचार** : गीत-संगीत और वाद्यों की ध्वनि सुनने में आसक्ति रखना। व्याभिचारी जनों की संगति करना। वेश्यागृह गमन करना, सिनेमा, टी.वी. आदि देखना, बिना प्रयोजन घूमना आदि।

6. **शिकार व्यसन त्याग के अतिचार** : चित्रों का फाड़ना, चित्र वाले वस्त्रों को काटना, फाड़ना, मिट्टी, प्लास्टिक आदि से बने जानवरों को तोड़ना आदि।

7. **चोरी व्यसन त्याग के अतिचार** : भागीदार के भाग को हड़पना, भाई-बंधुओं का भाग न देना, अपने निकट की दूसरे की भूमि में अपना अधिकार बढ़ाना आदि।

8. **परस्त्री सेवन त्याग व्रत के अतिचार** : अपने साथ विवाह की इच्छा से किसी कन्या को दूषण लगाना, गंधर्व विवाह (लव मैरिज) करना, कन्याओं को उड़ाकर उनसे दुराचार करना आदि।

9. **रात्रि भोजन त्याग व्रत के अतिचार** : दिन के प्रथम तथा अन्तिम मुहूर्त में भोजन करना तथा दवा आदि लेना। रात्रि में दूध, फलादिक का सेवन करना या दूसरों को खिलाना। रात्रि में भोजन बनाना या रात्रि में बने पदार्थ खाना।

10. **जलगालन व्रत के अतिचार** : 48 मिनट बाद बिना छना पानी पीना। पतले और जीर्ण वस्त्र से पानी छानना। जिवानी यथास्थान न डालना।

इतना विशेष है कि यदि उपरोक्त कार्य यदा-कदा हों तो अतिचार कहलाते हैं। नियमित होने पर व्रत भंग हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : रवीन्द्र कुमार जैन, अशोकनगर

जिज्ञासा : निदान किसे कहते हैं, क्या अगली पर्याय अच्छी मिलने की भावना भी निदान है?

समाधान : धर्मसेवन करके उसके फलस्वरूप आगामी भव में भोगों की आकांक्षा करना, इन्द्र, चक्रवर्ती आदि पदों को

पाने की इच्छा करना निदान कहलाता है। सर्वार्थसिद्धि 7/37 में इस प्रकार कहा है -

भोगाकांक्षा नियतुं दीयते चित्तं तस्मिन्स्तेनेति वा निदानम्।

भोगाकांक्षा से जिसमें या जिसके कारण चित्त नियम से दिया जाता है वह निदान है।

निदान के दो भेद हैं, अप्रशस्त निदान तथा प्रशस्त निदान। अप्रशस्त निदान दो प्रकार है-

1. भोगार्थ निदान - देव, मनुष्यों में प्राप्त होने वाले भोगों की अभिलाषा करना, स्त्रीपना, धनिकपना, श्रेष्ठीपद, नारायण, चक्रवर्तीपना आदि की भोगों के लिए अभिलाषा करना यह भोगार्थ अप्रशस्त निदान है। किसी राजा, श्रेष्ठी, महारानी आदि को सुखों का उपभोग करते हुए देखकर इच्छा करना कि मेरे पूजा, तप, व्रत आदि का फल हो तो मैं भी ऐसा बनूँ आदि भोगार्थ निदान है।

2. मानार्थ निदान : अभिमान के वश होकर उत्तम जाति, कुल की अभिलाषा करना, आचार्यपद, गणधरपद, तीर्थकर पद, सौभाग्य, आज्ञा और सुन्दरता इनकी प्रार्थना करना, क्रुद्ध होकर मरण समय में शत्रु वध आदिक की इच्छा करना मानार्थ निदान है।

3. प्रशस्त निदान : पौरुष, शारीरिक बल, वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम होने से उत्पन्न होने वाला दृढ़ परिणाम, वज्रवृषभ नाराच संहनन आदि संयम साधक सामग्री मुझे प्राप्त हों यह प्रशस्त निदान है। मेरे दुःखों का नाश हो, मेरे कर्मों का नाश हो, मेरे समाधिमरण हो, मुझे रत्नत्रयरूप बोधि की प्राप्ति हो, ये मोक्ष के कारण भूत प्रशस्त निदान हैं। जिनधर्म को भलीभांति से पालन कर सकें इसलिए हमारा जन्म आगामी भव में बड़े कुटुम्ब में न हो क्योंकि कुटुम्ब की विडम्बना से धर्म साधन में बाधा होती है। धनिक व राजा के महारम्भी परिग्रही होने से धर्म साधन के भाव नहीं होते, इसीलिए आगे मेरा जन्म उत्तम कुल, जाति वाले मध्यम दर्जे के परिवार में हो। यह भी प्रशस्त निदान कहा जाता है। उपरोक्त में से अप्रशस्त निदान सर्वथा हेय है। गृहस्थ को कदाचित् उपरोक्त प्रशस्त निदान प्रयोजनवान् हैं। मुनिराज तो दुःखों का नाश हो, कर्मों का नाश हो आदि प्रार्थना करते हैं और यह भी जानते हैं रत्नत्रय की आराधना से किसी भी प्रकार का निदान न करने पर भी, अन्य जन्म में निश्चय से पुरुषत्व व संयम आदि की प्राप्ति होती ही है। निदान के विशेष विवरण के लिए भगवती आराधना गाथा 1216/1226 तथा अमितगति श्रावकाचार अधिकार-7, श्लोक नं. 20 से 46 तक देखने का कष्ट करें।

प्रश्नकर्ता : श्रीमती सुरेखा दोषी, बारामती

जिज्ञासा : वीर निर्वाण संवत्, विक्रम संवत्, शक संवत् तथा सन् में कितना अंतर रहता है?

समाधान : उपरोक्त चारों संवत्तों में सबसे नवीन शक संवत् है। इससे प्राचीन ईसवी सन् है। उससे प्राचीन विक्रम संवत् है और सबसे प्राचीन वीर निर्वाण संवत् है। अतः इनको परस्पर में निकालने के लिए शक संवत् में 77 जोड़ने पर ईसवी सन् निकलता है। ईसवी सन् में 57 जोड़ने पर विक्रम संवत् निकल आता है। तथा विक्रम संवत् में 470 जोड़ने पर वीर निर्वाण संवत् निकलता है। उदाहरण : यदि किसी ग्रन्थ का रचना काल शक संवत् 105 लिखा हो तो उस काल को 77 करने पर 182 ईसवी सन् मानना चाहिए तथा इसी में 57 जोड़ने पर अर्थात् $182 + 57 = 239$ विक्रम संवत् मानना चाहिए और इसमें 470 जोड़ने पर $239 + 470 = 709$ वीर निर्वाण संवत् मानना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : पं. महेशचन्द्र जैन, भिण्ड

जिज्ञासा : पं. मोहनलाल शास्त्री द्वारा संपादित तत्त्वार्थसूत्र में असैनी पंचेन्द्रिय तिर्यचों का नियम से सम्मूर्च्छन जन्म होता है, ऐसा लिखा है, तो क्या वे सभी नपुंसक होते हैं?

समाधान : असैनी पंचेन्द्रिय जीव गर्भज और सम्मूर्च्छन दोनों प्रकार के होते हैं। जो सम्मूर्च्छन होते हैं वे तो नियम से नपुंसक ही होते हैं और जो गर्भज होते हैं वे तीनों वेद वाले होते हैं। पं. मोहनलाल शास्त्री द्वारा सम्पादित मोक्षशास्त्र का जो विषय आपने प्रश्न में लिखा है, वह गलत है कृपया सुधार लीजिएगा। कुछ प्रमाण इस प्रकार हैं -

1. श्री धवना पुस्तक, 1 पृष्ठ 346 पर इस प्रकार कहा है: "तिरिक्खा तिवेदा असण्णि पंचिन्द्रिय-प्पहुदिजाव संजदा-संजदात्ति" ॥107 ॥

अर्थ - तिर्यच असंज्ञी पंचेन्द्रिय से लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक तीनों वेदों से युक्त होते हैं। (यदि सभी असैनी पंचेन्द्रिय सम्मूर्च्छन ही होते तो वे तीनों वेदों से युक्त नहीं हो सकते हैं क्योंकि सम्मूर्च्छन जीव तो नियम से नपुंसक ही होते हैं)

2. श्री मूलाचार गाथा 1132 में इस प्रकार कहा है -

**पंचेदिया दु सेसा सण्णि असण्णीय तिरिय मणुसा य।
ते हांति इत्थिपुरिसा णपुंसगा चावि वेदेहिं ॥1132 ॥**

अर्थ : शेष संज्ञी और असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यच तथा मनुष्य ये वेदों की अपेक्षा स्त्री, पुरुष और नपुंसक भी होते हैं ॥ 1132 ॥

3. जीवकाण्ड गाथा 79 में इस प्रकार कहा गया है :

**इगिवण्णं इगिविगले असण्णिसण्णियजलथलखगाणं।
गब्भभवे सम्मुच्छे दुतिगं भोगथलखचरे वो दो ॥79 ॥**

अर्थ : एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियों के इक्कावन (51), पंचेन्द्रियतिर्यचों में जलचर, थलचर और नभचर के संज्ञी व असंज्ञियों में गर्भज के दो और सम्मूर्च्छन के तीन भेद तथा भोग-भूमिज थलचर और नभचर के दो-दो भेद होते हैं ॥79 ॥

विशेषार्थ : यहाँ जलचर, थलचर और नभचर के संज्ञी व असंज्ञियों में गर्भज के पर्याप्त व निवृत्य-पर्याप्त ऐसे दो-दो भेद

होते हैं, क्योंकि गर्भजों में लब्धपर्याप्तक नहीं होते। इस प्रकार गर्भज संज्ञी व असंज्ञी कर्मभूमिज तिर्यचों में इस प्रकार गर्भज संज्ञी व असंज्ञी कर्मभूमिज तिर्यचों में बारह जीवसमास होते हैं। अर्थात् लब्धपर्याप्तक नहीं होते। अर्थात् सैनी गर्भज जलचर, थलचर, नभचर तथा असैनी गर्भज जलचर, थलचर, नभचर ये छह भेद हुए। इनको पर्याप्त एवं निवृत्यपर्याप्त इन दो से गुणा करने पर 12 जीवसमास हुए।

उपरोक्त प्रमाणों से यह स्पष्ट होता है कि असैनी पंचेन्द्रिय सम्मूर्च्छन तथा गर्भज दोनों प्रकार के होते हैं, जिनमें गर्भज तो तीनों वेद वाले होते हैं और सम्मूर्च्छन केवल नपुंसक वेद वाले ही होते हैं।

प्रश्नकर्ता : अखिलेश जैन, फिरोजाबाद

जिज्ञासा: सभी देवियाँ प्रथम कल्प में होती हैं तो क्या सोलहवें स्वर्ग में ले जायी जाने वाली देवियों की भी लेश्या पीत ही रहती है या शुक्ल हो जाती है?

समाधान : गोम्मटसार जीवकांड गाथा 546 में इस प्रकार कहा है:

तेउस्साय सद्दाले लोगस्स असंख्यभागमेत्तं तु।

अउचोद्दसभागा वा देसूणा होंति णियमेण ॥546 ॥

अर्थ : पीत लेश्या का स्वस्थानस्वस्थान की अपेक्षा लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श है और विहारवत्स्वस्थान की अपेक्षा कुछ कम आठ बटा चौदह भाग (8/14) स्पर्श है।

विशेषार्थ : यहाँ विहारवत् स्वस्थान की अपेक्षा कुछ कम आठ राजू स्पर्श कहा है क्योंकि तीसरे नरक तक विहार करते हुए तेजो लेश्या वाले देवों का नीचे 2 राजू और ऊपर 16 वें स्वर्ग तक 6 राजू इसप्रकार 8 राजू क्षेत्र का स्पर्श पाया जाता है।

यहाँ कोई शंका करता है कि ऊपर 16 वें स्वर्ग में पीतलेश्या नहीं है मात्र शुक्ल लेश्या है। फिर ऊपर 6 राजू स्पर्श कैसे संभव है। इसका समाधान यह है कि 16 वें स्वर्ग के देवों की नियोगिनी देवियाँ सौधर्म युगल से उत्पन्न होती हैं और उनके पीत लेश्या ही होती है। 16 वें स्वर्ग तक के देव अपनी नियोगिनी देवियों को अपने विमानों में ले जाते हैं।

श्री देवसेनाचार्य विरचित तत्त्वसार के श्लोक नं. 22 की टीका में इस प्रकार कहा है। “इन सर्व देवियों के मध्यम पीत लेश्या होती है।”

उपरोक्त प्रमाणों से यह स्पष्ट है कि सभी देवियों के पीत लेश्या ही होती है। और उनके 16 वें स्वर्ग में भी ले जाये जाने पर लेश्या नहीं बदलती है।

1/205, प्रोफेसर कालोनी,
आगरा (उ.प्र.)

बोध-कथा

खुशामद का फल

अमेरिका के प्रसिद्ध व्यवसायी राकफेलर बहुत धनाढ्य थे। जिस प्रभूत मात्रा में उनके पास धन था, उतना ही विशाल था उनका हृदय भी। जरूरत मन्द लोगों तथा समाज सेवा संस्थाओं को दान देने में वे कभी हिचकिचाते नहीं थे। उनकी प्रसिद्धि एक दानवीर के रूप में फैल गई थी।

किन्तु उन्हें खुशामद पसन्द नहीं थी।

एक आदमी ने सोचा कि श्री राकफेलर बहुत बड़े दानी हैं। चलो अवसर का लाभ उठाया जाय। उनके पास जाकर उनकी थोड़ी प्रशंसा करके कुछ धन प्राप्त किया जाय। यह सोचकर वह राकफेलर के पास आ पहुँचा और लगा उनकी खुशामद करने, प्रशंसा के पुल बाँधने लगा -

“आपके जैसा दानवीर तो सारे अमेरिका में नहीं है। जहाँ भी जाओ, आपकी दानवीरता की प्रशंसा सुनने को मिलती है। मैं बड़ी दूर से यहाँ आया हूँ रास्ते में जगह-जगह आपकी ही प्रशंसा सुनने को मिली आपके समान...।”

“ठहरिए महाशय, एक बात बताइए। आप जिस मार्ग से आए हैं उसी मार्ग से लौटेंगे अथवा किसी अन्य मार्ग से?” राकफेलर को उस व्यक्ति द्वारा की जा रही अपनी खुशामद कतई अच्छी नहीं लग रही थी। अतः उन्होंने बोलते-बोलते बीच में ही रोककर उपरोक्त प्रश्न पूछा।

उस व्यक्ति ने उत्तर दिया- “मैं उसी मार्ग से लौटूंगा जिधर से आया हूँ। बताइए, यदि आपका कोई काम हो तो उसे करके मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी।”

“हाँ, एक काम है”, राकफेलर ने कहा, “रास्ते में जिस-जिस आदमी ने मेरी तारीफ की उन सभी को कृपया कहते जाइये कि राकफेलर कोई दानवीर आदमी नहीं है। लोग उसकी झूठी प्रशंसा करते हैं। देखिए, उसने मुझे एक फूटी कौड़ी भी नहीं दी।”

“मेरा इतना काम आप ही कर दीजिएगा।” “नमस्कार।”

अपना-सा मुँह लिए वह खुशामदी आदमी खाली हाथ लौट गया।

अवश्य मंगवाये

पुस्तक का नाम	- भक्ति संस्कार सौरभ
संस्करण	- द्वितीय, जुलाई 2004, पृष्ठ-160
लागत मूल्य	- 12.00 रुपये
विक्रय मूल्य	- 6.00 रुपये
डाकखर्च	- 2.00 रुपये
विषय	- प्रार्थना, देववंदना, शास्त्र वंदना, गुरुवंदना, प्रमुख ग्रन्थ पाठ, प्रमुख स्तोत्र पाठ, आध्यात्मिक भजन, आचार्य वंदना आदि

सम्पर्क सूत्र :

डॉ. भरत जैन

आचार्य ज्ञानसागर ग्रन्थमाला,

श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान

वीरोदय नगर, सांगानेर, जयपुर (राज.)

फोन नं. 0141- 2730552, 3418497

श्री जयंत मलैया नगरीय प्रशासन एवं विकास मंत्री बने

दमोह के यशस्वी विधायक श्री जयंत जैन मलैया को नगरीय प्रशासन एवं विकास मंत्री बनाया गया है। हाल ही में म.प्र. की मुख्यमंत्री सुश्री उमाभारती ने अपने मंत्रीमण्डल के विस्तार में श्री जयंत मलैया को केबिनेट मंत्रीमंडल में शामिल किया। श्री मलैया पूर्व में श्री सुन्दरलाल पटवा के मंत्रीमण्डल में भी मंत्री रह चुके हैं। ज्ञातव्य रहे मध्यप्रदेश की वर्तमान सरकार में अब तीन जैन मंत्री हो गये हैं। श्री राघव जी वित्त योजना आर्थिक सांख्यिकी तथा श्रीमती अलका जैन स्कूल शिक्षा मंत्री के रूप में पहले से हैं।

श्री जयंत मलैया को केबिनेट मंत्री मण्डल में मंत्री बनने पर श्री राजेश रागी बक्सवाहा, देवेन्द्र देव, वीरेन्द्र सिंघई बक्सवाहा, ज्ञानचंद जैन, कमलेश जैन, राकेश जैन नरवां, आशीष शास्त्री, पं. सुनील संचय शास्त्री नरवां, सुनील शास्त्री जयपुर आदि ने बधाई प्रेषित की है। 'जिनभाषित' परिवार भी अभिनंदन करता है

सुनील संचय 'जैन दर्शनाचार्य', नरवां

पर्यूषण पर्व में विद्वान् बुलाने के लिये शीघ्रता करें

श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान, सांगानेर द्वारा प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी पर्यूषण पर्व में प्रवचन हेतु विद्वान् जायेंगे। अतः समाज से अनुरोध है कि जो भी समाज विद्वान् को बुलाना चाहे, यथाशीघ्र सूचित करे। 31 अगस्त तक प्राप्त पत्रों को स्वीकार किया जायेगा। इसके बाद पत्र आने पर स्वीकार नहीं किये जाएंगे।

पत्र व्यवहार का पता :-

अधिष्ठाता/निदेशक

श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान

वीरोदय नगर, जैन नशियाँ रोड, सांगानेर, जयपुर (राज.)

फोन नं. 0141-2730552, 2781649, मो. 3418497

पर्यूषण पर्व पर विद्वान् आमंत्रित करें

परमपूज्य सराकोद्धारक उपाध्याय श्री 108 ज्ञानसागर जी महाराज की प्रेरणा से स्थापित श्रुत संवर्धन संस्थान मेरठ (उ.प्र.) के तत्वावधान में प्रवचन, पूजन, दशलक्षण पर्व एवं अनुष्ठान हेतु विद्वानों को भेजा जा रहा है।

आपके नगर में धर्म प्रभावना हेतु यदि विद्वानों की आवश्यकता हो तो शीघ्र सम्पर्क करें।

सम्पर्क सूत्र

श्रुत संवर्धन संस्थान, प्रथम तल
247 देहली रोड, मेरठ (उ.प्र.)

श्रुत संवर्धन ज्ञान संस्कार शिक्षण शिविर की स्मारिका के लिये सामग्री भेजें

परमपूज्य सराकोद्धारक राष्ट्रसन्त उपाध्याय रत्न श्री 108 ज्ञानसागरजी महाराज की प्रेरणा एवं आशीर्वाद से श्रुत संवर्धन संस्थान मेरठ (उ.प्र.) के तत्वावधान में अब तक आयोजित हुए 'श्रुत संवर्धन ज्ञान संस्कार शिविरों' की 'प्रेरणा' नाम से भव्य व आकर्षक सामग्री युक्त स्मारिका निकालने का निर्णय लिया गया है। विगत वर्षों में मध्यप्रदेश में 28, उत्तरप्रदेश में 13 नगरों में, राजस्थान में 7 नगरों में शिविर का आयोजन किया जा चुका है। जिसमें बालबोध, छहढाला, तत्त्वार्थसूत्र, रत्नकरण्डश्रावकाचार, भक्तामर एवं पूजन विधि के साथ नैतिक शिक्षा का शिक्षण वरिष्ठ एवं नवोदित विद्वानों द्वारा कराया गया है। उक्त शिविरों में लगभग 11000 शिविरार्थी सम्मिलित हुए।

वर्तमान शिक्षा नीति से जहाँ छात्र धर्म, संस्कार से दूर हो रहे हैं वहीं भारतीय संस्कृति को भी खोते जा रहे हैं। आपसे अनुरोध है कि शिविर संयोजना को प्रभावी कराने हेतु परामर्श एवं अपनी सम्मति अविलम्ब भेजने की कृपा करें जिससे स्मारिका का प्रकाशन शीघ्र किया जा सके।

सम्पर्क सूत्र

श्रुत संवर्धन संस्थान, प्रथम तल

247 देहली रोड, मेरठ (उ.प्र.)

फोन नं. 01212528704, 3119857

श्रमण संस्कृति संस्थान का परीक्षा परिणाम शत-प्रतिशत रहा

श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान, सांगानेर में अध्ययनरत छात्रों का श्री दिगम्बर जैन आचार्य संस्कृत महाविद्यालय में लौकिक एवं धार्मिक परीक्षा में प्रतिवर्ष की भांति सत्र 2003-2004 का परीक्षा परिणाम शत-प्रतिशत रहा। माध्यमिक शिक्षा मण्डल, अजमेर की कनिष्ठ उपाध्याय (11वीं) की परीक्षा में 28 छात्रों में से 20 प्रथम श्रेणी एवं 12 छात्र द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण हुए एवं वरिष्ठ उपाध्याय (12वीं) के 28 छात्रों में 12 छात्र प्रथम श्रेणी एवं 16 छात्र द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण हुए एवं राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर के शास्त्री प्रथम वर्ष के 18 छात्रों में से 6 छात्र प्रथम श्रेणी व 12 छात्र द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण हुए, शास्त्री द्वितीय वर्ष के 19 छात्रों में से 5 प्रथम श्रेणी, एवं 14 छात्र द्वितीय श्रेणी उत्तीर्ण में हुए, शास्त्री तृतीय वर्ष के 14 छात्रों में 10 छात्र प्रथम श्रेणी, 4 छात्र द्वितीय श्रेणी से उत्तीर्ण होकर शास्त्री उपाधि प्राप्त की तथा तृतीय श्रेणी में कोई भी छात्र नहीं रहा।

पुलक जैन

महाराष्ट्र में जैन समाज अल्पसंख्यक घोषित

महाराष्ट्र शासन ने जैन समाज की चिरप्रतीक्षित मांग पर विभिन्न दृष्टिकोणों से विचार कर विगत 7 मई 2004 को राज्य में 'जैन समाज' को 'अल्पसंख्यक समाज' घोषित कर दिया है। इस सम्बन्ध में महाराष्ट्र के राज्यपाल के आदेश एवं नाम से महाराष्ट्र शासन के सचिव श्री यू.पी.एस. मदान के हस्ताक्षर से 7 मई 2004 को सामान्य प्रशासन विभाग, मंत्रालय, मुम्बई 400032, महाराष्ट्र से निर्णय जारी हो गया है। मराठी भाषा में प्रकाशित इस शासन निर्णय क्रमांक आर.एम.एन./2003/1216/प्र.क्र.114/03/35 में जारी इस निर्णय में सूचित किया गया है कि राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग अधिनियम 1992 के अनुसार केन्द्र शासन ने मुस्लिम, ईसाई, सिक्ख, बौद्ध, एवं पारसी इन समाजों को 'अल्पसंख्यक समाज' सम्बोधित करके घोषित किया है। उसके अनुसार राज्य के इन समाजों को अल्पसंख्यक समाज के लिए पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध हैं। राज्य के जैन समाज की ओर से उपर्युक्त पाँचों समाजों के समान ही इस समाज को भी 'अल्प-संख्यक' समाज की घोषणा किए जाने के सम्बन्ध में माँग की गयी थी और शासन इस पर विचार कर रहा था। शासन ने इस सम्बन्ध में पर्याप्त सोचकर राज्य के जैन समाज को 'अल्पसंख्यक समाज' घोषित करने का निर्णय लिया है।

जैन समाज के विद्यार्थियों, संस्थाओं के शैक्षणिक एवं भाषिक उन्नयन के लिए लाभकारी इस निर्णय के प्रति महाराष्ट्र शासन के माननीय मुख्यमंत्री, अल्पसंख्यक विभागीय मंत्री, महाराष्ट्र राज्य अल्पसंख्यक आयोग के साथ ही वे सभी जन बधाई के पात्र हैं जिन्होंने इस महत्वपूर्ण कार्य में सहयोग प्रदान किया है। जैन समाज जबलपुर, प्रशासकीय प्रशिक्षण संस्थान, श्री पिसनहारी ट्रस्ट कमेटी, श्री नंदीश्वर द्वीप रचना समिति, जैन नवयुवक सभा, दयोदय तीर्थ कमेटी आदि अनेकों संस्थाओं द्वारा महाराष्ट्र शासन के प्रति बधाईयाँ प्रेषित कर हर्ष व्यक्त किया है।

नरेश गढ़वाल

अजित जैन, एडवोकेट, जबलपुर

आवेदन पत्र आमंत्रित

प्रशासकीय प्रशिक्षण संस्थान, पिसनहारी मढ़िया, जबलपुर संस्थान के डायरेक्टर श्री अजित जैन एडवोकेट द्वारा जारी विज्ञापित के अनुसार माह अक्टूबर 2004 के प्रारम्भ होने वाले नवीन सत्र के प्रवेश हेतु 15 अगस्त 2004 तक प्रशिक्षार्थियों द्वारा आवेदन पत्र मंगाए गए।

प्रतियोगी परीक्षा के प्रशिक्षार्थी गण, श्री मुकेश सिंघई, अधीक्षक भारतवर्षीय श्री दिगम्बर जैन प्रशासकीय प्रशिक्षण संस्थान, पाण्डुक शिला परिसर, पिसनहारी मढ़िया, गढ़ा जबलपुर

(फोन नं.0761-2371121) के नाम पर आवेदन पत्र प्रेषित करें। यह भी विदित कराया गया है कि माह सितम्बर 2004 में नवीन प्रशिक्षार्थियों की भरती का कार्यक्रम उन प्रशिक्षार्थियों को भेजा जावेगा। जिनके आवेदन 15 अगस्त 2004 तक कार्यालय को प्राप्त हो चुके होंगे।

एलोरा गुरुकुल में 'आचार्य विद्यासागर सभागृह' का नवनिर्माण शुभारंभ समारोह

श्री पार्श्वनाथ ब्रह्मचर्याश्रम (गुरुकुल) एलोरा जिला औरंगाबाद (महाराष्ट्र) में परम पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर सभागृह का नव निर्माण शुभारम्भ समारोह ध.श्री मान् अशोक कुमार जी पाटनी (आर.के.मार्बल) मदनगंज-किशनगढ़ वालों की प्रेरणा से रविवार, दिनांक 18-07-04, दोपहर-3 बजे श्री सुभाषसा केशरसा साहू जी, जालना वालों की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ।



संत शिरोमणी आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज की शिष्या का सुयश

आचार्य श्री की आज्ञानुसार संस्कृत विषय में एम. ए. करने के लिए प्रतिभा मंडल से आयी शारदा सीमेंट पाइप फैक्ट्री वाले श्री रूपचन्द जी जैन की सुपुत्री ब्रह्म.

रश्मि (क्षमा दीदी) ने शास. स्ना. महाविद्यालय दमोह में अध्ययन करते हुए संस्कृत के साथ प्राकृत तथा जैन विद्या वैकल्पिक वर्ग स्वीकृत करके डॉ. भागेन्दु जी के संरक्षण में एम. ए. संस्कृत 2004 की परीक्षा में 86.6 प्रतिशत अंक अर्जित कर डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर में प्रथम स्थान प्राप्त किया है। इस उपलब्धि पर ब्र. रश्मि (क्षमा दीदी) को सभी शुभचिंतकों ने शुभकामनाएं प्रेषित की।



कु. नमिता दिनेशकुमार गंगवाल का सुयश

औरंगाबाद के उद्योगपति श्री दिनेश कुमार जी गंगवाल की पुत्री तथा स्वतंत्रता संग्राम सेनानी श्री पन्नालाल जी गंगवाल की पोती कु. नमिता गंगवाल ने वर्ष 2004 की H.S.C. की परीक्षा में औरंगाबाद विभाग

में 85 प्रतिशत अंक प्राप्त कर 11वाँ मेरिट का स्थान प्राप्त कर अपना एवं परिवार का तथा समाज का नाम रोशन किया। अतः विविध संस्थाओं द्वारा अभिनंदन किया गया। कु. नमिता ने न केवल स्कूल की पढ़ाई में प्रथम स्थान प्राप्त किया, बल्कि जीवन की अन्य कलाओं में भी राष्ट्रीय स्तर का यश सम्पादन किया है। विशेषकर चित्रकला में जापान अवार्ड मिला एवं सम्पूर्ण भारतवर्ष में से 23 लाख छात्र-छात्राओं ने भाग लिया जिसमें नमिता को स्वर्ण पदक प्राप्त हुआ।

गोमटेश प्रार्थना अष्टक

मुनि श्री आर्जवसागर जी



ऋषभदेव के योग्य पुत्र जो, कामदेव के पदधारी ।
त्याग राज्य को बने तपस्वी, पूर्ण हुये वे अविकारी ॥
भरतादिक नृप चरणों में आ, संस्तुति कर नत माथ हुये ।
बाहुबली जी निर्विकल्प हो, चिन्मय गुण के साथ हुये ॥

एक वर्ष उपवास नियम से, अडिग रूप हो ध्यान किया ।
भय ममता को छोड़ आपने, समता का रस पान किया ॥
शुक्ल ध्यान की अग्नि से फिर, मोह शत्रु का नाश किया ।
बने केवली बाहुबली जी, अक्षय सुख को प्राप्त किया ॥

वीतरागमय गोमटेश ये, दिग्-अम्बर बन खड़े हुये ।
देवों से भी अतिशयकारी, महाकीर्ति से बड़े हुये ॥
इस अम्बर की शोभाश्री को, मेरु सदृश बढ़ा रहे ।
स्वयं ध्यान की आभा से ये, शान्ति सुधा को बहा रहे ॥

बिन बोले सन्देश दे रहे, मोक्ष मार्ग का हे! स्वामी ।
पाप तजो सभी बनो मुमुक्षु, यही जगत को सुखनामी ॥
जैन धर्म का मूल रहा जो, दया, शील को अपनाओ ।
इन्द्रियविजयी श्रमणमार्ग से, ध्यानसिद्धि कर शिव पाओ ॥

धर्मभाव से भरे यहाँ पर, लोग हजारों आते हैं ।
दर्शन पा वे गोमटेश का, समदर्शन अपनाते हैं ॥
त्यागमयी ये मुद्रा लखके, स्वयं त्याग कुछ करते हैं ।
तब चरणों में ध्यान लगाते, आत्मिक सुख को पाते हैं ॥

बड़े पुण्य से बाहुबली जी तब दर्शन भविजन पाते ।
सब चिन्तायें विषय खेद को, भक्त भूल हैं वे जाते ॥
उत्तम निर्मल भाव जगाते, संस्तुति करते गुण गाते ।
अशुभ कर्म को धोते हैं जन, पुण्य खजाना वे पाते ॥

गोमटेश जी तब दर्शन से, मन मेरा ना हटता है ।
नहीं लौट जाये प्रभु ऐसा, मम मानस यह कहता है ॥
प्रतिमा में क्या मंत्र भरा जो, मुग्ध हमें कर लेता है ।
अद्भुत मनोज्ञ मूर्त को यह हृदय खींच भर लेता है ॥

धन्य हुये तुम अनुपम पद पा, अनंत गुण के धनी बने ।
सबदर्शी परमेश्वर होकर, भव्य कमल को रवी बने ॥
बाहुबली श्री गोमटेश जी, तब चरणों को नमता मैं ।
बन जाऊँ तुम सम मैं स्वामी, यही प्रार्थना करता मैं ॥

सम्यक्-अनुप्रेक्षा

महेन्द्र कुमार जैन

सोच रहा मैंने तो भगवन, कुछ न पाप किया है।
फिर भी क्यूं मुझको इस भव में, क्यूं कर दण्ड दिया है।
पर अनादि से संचित कर्मों का ही, पल तो पाया,
नही सोच पाऊं मैं ऐसा, जिनवर जो बतलाया ॥5 ॥

थोड़ी सी पीड़ा से प्रभु, मैं तो विचलित हो जाता,
जिनवर का दर छोड़ के, मैं तो देवमूढ़ हो जाता।
वीत-राग जिनदेव को रागी, मान के पूजा करता,
आश नहीं जब पूरी होती, तो मैं पलायन करता ॥6 ॥

रागी-द्वेषी देव-कुदेव की मैं पूजन करता,
शुभ चांदनी का पथ तज कर, मिथ्या पथ पर चलता।
अपने कर्मों का ही लेखा, मुझे समझ नहीं आता,
और जिनेद्र को दोष लगाकर, देवमूढ़ हो जाता ॥7 ॥

निश्चल मन से सोचूं तब, पीड़ा से मन भर आता,
दिव्य द्वार को तज कर मैं, क्यूं देवमूढ़ हो जाता।
कुगुरु की संगत में करके, नाहक पाप कमाता,
गंडा मुदरी तावीजों से, मन लांछित कर आता ॥8 ॥

कैसे-कैसे महामुनी, जिन सहे उपसर्ग घनेरे,
नहीं किया पर दोषारोपण, कर्म विपाक हैं मेरे।
जिन श्रद्धा से किंचित भी, न उनसे मन को फेरा,
अडिग रहे, निज आत्मलीन हो, मेट लिया भव फेरा ॥9 ॥

आओ विचारें उनकी गाथा, जिन उपसर्ग सहे हैं,
कालजयी वे बने सभी, जिन सम्यक् मार्ग गहे हैं।
काल भी जिनसे हार गया, ऐसे वे आत्मध्यानी,
मुक्ति-वधू के कंत बने, ऐसे वे भेदविज्ञानी ॥10 ॥

धन्य धन्य वे महामुनि, कोल्हू में जो पिल जाते,
अभिनन्दन आदि मुनिवर, सब पंच सहस्र हैं आते।
पंक्तिबद्ध चलते आते, कोल्हू में जो पिलते जाते,
हम विचार से ही घबड़ाते, पर वे न घबड़ाते ॥11 ॥

नहीं क्रोध, नहीं क्षोभ, नहीं आक्षेप किसी पर करते,
शांत भाव से कर्मोदयफल मान, निर्जरा करते।
वे बड़भागी महाव्रती तब, निज स्वरूप में रमण करें,
ऐसे ही उपसर्ग विजेता, मोक्ष-लक्ष्मी वरण करें ॥12 ॥

S-599, नेहरूनगर, भोपाल